छत्तीसगढ़ का जैन-शिल्प

छत्तीसगढ़ का जैन-शिल्प

भगवान महावीर के 2600 वीं जयन्ती
महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित

सम्पादक
डॉ. लक्ष्मीशंकर निगम

सह-सम्पादक
रमेश जैन

जैन अध्ययन संस्थान
रायपुर (छत्तीसगढ़)
2001

छत्तीसगढ़ का जैन-शिल्प

प्रथम संस्करण 2001

प्रकाशक

जैन अध्ययन संस्थान,

यादराम दिगम्बर जैन धर्मशाला एवं मंदिर, के पास,

मालवीय रोड़, रायपुर (छत्तीसगढ़)

फोन - 226896

कम्पोजिंग

श्री ग्राफिक्स

फव्वारा चौंक, बैरन बाजार

रायपुर - 492001

फोन - 425159

मुद्रक

गीता पब्लिकेशन

महामाई पारा, रायपुर

फोन - (0771) 539927, 636551

मूल्य - रू. 50/-

स्वर्गीय श्री दीपचंद जैन

एवं

स्वर्गीय श्रीमती जयवन्ती देवी जैन

की पुण्यस्मृति में

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं,

णमो सिद्धाणं

णमो आइरियाणं,

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं

•

अरिहंतों को नमस्कार हो,

सिद्धों को नमस्कार हो,

आचार्यों को नमस्कार हो,

उपाध्यायों को नमस्कार हो

और इस लोक के सभी साधुओं को

नमस्कार हो।

सम्पादकीय

छत्तीसगढ़ में जैन धर्म से संबंधित पुरावशेष यत्र-तत्र बिखरे मिलते है। सामान्यतः जैन शिल्प की चर्चा करने पर लोगों का ध्यान आरंग के जैन मंदिर की ओर जाता है, वास्तविकता यह है कि जैन सामग्री पर समग्र रूप से प्रकाश डालने वाली सामग्री का अभाव के कारण ही ऐसी भावना विकसित हुई है। पर्यूषण-99 के अवसर पर आचार्य प्रवर मुनि श्री विद्यासागर जी महाराज के शिष्य ब्रह्मचारी विनोद का रायपुर प्रवास हुआ और मेरे मित्र श्री रमेश जैन ने मुझे उनसे मिलवाया। ब्रह्मचारी विनोद ने छत्तीसगढ़ की पुरातात्विक सामग्रियों को संकलित कर पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने का आग्रह किया। तदनुसार इस पुस्तक की योजना बनी। सौभाग्य से भगवान महावीर की 2600 वी जयन्ती का पावन प्रसंग भी इस वर्ष उपस्थित हुआ है और नवगठित छत्तीसगढ़ राज्य में यह महोत्सव उल्लासपूर्ण वातावरण में आयोजित हो रहा है।

लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व भगवान महावीर के निर्वाण का प्रसंग उपस्थित हुआ था तब जैन धर्म, संस्कृति और कला पर अनेकानेक ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। (स्व.) अमलानन्द घोष के सम्पादन में भारत के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों के लेखों से युक्त जैन कला एवं स्थापत्य (तीन खण्ड) का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में किया गया था। यह ग्रंथ उच्च कोटि की सामग्री और विस्तृत विषय वस्तु के कारण न केवल जैन कला-साहित्य मे वरन् भारतीय कला के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ग्रंथ की गुणवत्ता से अनेकानेक अध्येता लाभांवित हुए हैं।

इस कार्य को हाथ में लेते समय, हम अपनी सीमाओं एवं सामर्थ्य से परिचित थे और स्वयं ही सम्पूर्ण कार्य को पूर्णता प्रदान करने में असमर्थ थे। अतः छत्तीसगढ़ के जैन-शिल्प पर शोध-पत्र लिखने हेतु विभिन्न अध्येयताओं को आमंत्रित किया गया। किसी ग्रंथ का सम्पादन करना और विद्वान लेखकों से समय पर आलेख प्राप्त कर सकना, यह सचमुच ही एक चुनौतीपूर्ण कठिन कार्य है। किन्तु मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ कि कुछ अपवादों को छोड़कर सभी लेखकों से मुझे पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ और इस पुस्तक का प्रकाशन समय पर हो सका।

जैसा कि ज्ञात ही है कि इस ग्रंथ का प्रकाशन भगवान महावीर की 2600 वीं जयन्ती के अवसर पर हो रहा है। अतः पुस्तक के प्रस्तावना खण्ड में भगवान महावीर पर केन्द्रित दो लेखों का समावेश किया गया है। एक लेख महावीर के जीवन

और सिद्धांत पर है और दूसरा कला में उसके शिल्पांकन की परम्परा पर है। ग्रंथ का दूसरा खण्ड छत्तीसगढ़ से संबंधित है जिसमें स्थल विशेष और प्रतिमाओं पर अलग-अलग शोध-पत्र सम्मिलित किए गए हैं। छत्तीसगढ़ में जैन कला एवं स्थापत्य की समग्र-स्वरूप की कल्पना को रेखांकित करने के लिए भी एक लेख सम्मिलित किया गया है।

इस ग्रंथ में मूल लेखों के अतिरिक्त स्व. डॉ. मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित द्वारा लिखित *'आरंग में प्राप्त तीन स्फटिक मूर्तियाँ'*, स्व. बालचन्द्र जैन लिखित *'रायपुर संग्रहालय की जैन प्रतिमाएँ'* का पुनर्मुद्रण किया गया है। एतद् हेतु हम इन सामग्रियों के मूल प्रकाशकों क्रमशः विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर और भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। डॉ. राजकुमार शर्मा लिखित **'मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ'** कुछ अंशों को भी पुनर्मुद्रित किया गया है जिसके लिए हम डॉ. शर्मा और मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के आभारी हैं। डॉ. रमानाथ मिश्र ने अपने शोध लेख *'दक्षिण कोसल और डाहल की जैन प्रतिमाओं की विशिष्टताएँ'* के अनुवाद और प्रकाशन की अनुमति देकर हमें अनुग्रहित किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ का कार्य सहयोगी लेखकों के बिना पूर्ण नहीं हो सकता, वस्तुतः यह उनकी ही कृति है। अपने लेखों के माध्यम से लेखकों ने मुझ पर व्यक्तिगत उपकार किया है अतः मैं उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

पुस्तक के प्रकाशन को मूर्त रूप देने में नवगठित संस्था **'जैन अध्ययन संस्थान'** का महत्वपूर्ण योगदान है। पुस्तक को अल्प समय में सुन्दर रूप से कम्पोज़ करने के लिए श्री ग्राफिक्स, बैरन बाज़ार, रायपुर तथा सुन्दर मुद्रण के लिए गीता पब्लिकेशन्स को में धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अन्त में एक बात और कहना चाहता हूँ कि इस ग्रंथ में छत्तीसगढ़ के प्राचीन कला और स्थापत्य को ही केन्द्र में रखा गया है और आधुनिक केन्द्रों की चर्चा नहीं की गई है। छत्तीसगढ़ की विपुल जैन-शिल्प पर प्रकाश डालने के इस प्रयास को पूर्ण नहीं किया जा सकता। सम्पादक के रूप में इस कमी के लिए मैं स्वयं का उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए खेद व्यक्त करता हूँ। भविष्य में निश्चित रूप से और अधिक परिष्कृत रूप में इस विषय पर ग्रंथों का प्रकाश' होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।
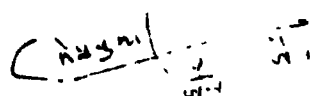
रायपुर (छत्तीसगढ़)
चैत प्रतिपदा, 2059 तदनुसार 26 मार्च 2001

(लक्ष्मीशंकर निगम)

अपनी बात

छत्तीसगढ़ की धरती और जैन कुल में जन्म लेकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। इस पुस्तक के माध्यम से इन दोनों की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है। यह भगवान महावीर की कृपा और आचार्य प्रवर विद्यासागर जी महाराज का आशीर्वाद ही है। इस अवसर पर अपने पिता श्री दीपचन्द जैन को सादर स्मरण करता हूँ, जिन्होनें मुझे जैन संस्कार दिए। अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कुमुद जैन को भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होनें आजीवन मेरे माता-पिता की सेवा की और मुझे इस कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रेरित करती रहीं।

(रमेश जैन)
सहसम्पादक

विषय सूची

प्रस्तावना-खण्ड

छत्तीसगढ़-खण्ड

चित्र सूची

मुखपृष्ठ - आदिनाथ, सिरपुर, एल. डी. इन्स्टीट्यूट संग्रहालय, अहमदाबाद.

चित्र क्रमांक

लेखक-सूची

डॉ. मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित (स्वर्गीय)- *डेक्कन कॉलेज, पूणे, सागर एवं नागपुर विश्वविद्यालय में कार्य करने के पश्चात् निर्देशक, पुरातत्व एवं संग्रहालय, महाराष्ट्र शासन.*

बालचन्द्र जैन (स्वर्गीय) - *पुरातत्व एवं संग्रहालय, मध्यप्रदेश शासन में उपसंचालक पद से सेवानिवृत्त.*

डॉ. राजकुमार शर्मा - *सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर.*

डॉ. रमानाथ मिश्र - *प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय , ग्वालियर.*

डॉ. चन्द्रशेखर गुप्त - *प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय (नागपुर).*

डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र - *रीडर, इतिहास अध्ययन शाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर.*

डॉ. कृष्ण कुमार झा - *सेवा निवृत्त उपायुक्त, केन्द्रीय विद्यालय संगठन, भारत सरकार. सम्प्रति - जगदलपुर में वकालत.*

डॉ. (श्रीमती) शोभा निगम - *प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग शासकीय छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर.*

डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी - *रीडर एवं विभागाध्यक्ष, भारतीय कला का इतिहास एवं संस्कृति, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़.*

वेदप्रकाश नगायच - *मुद्राशास्त्री, पुरातत्व, अभिलेखागार एवं संग्रहालय मध्यप्रदेश, भोपाल.*

गिरधारीलाल रायकवार - *पुरातत्ववेत्ता, पुरातत्व, अभिलेखागार एवं संग्रहालय, छत्तीसगढ़ रायपुर.*

राहुल कुमार सिंह - *संग्रहाध्यक्ष, जिला पुरातत्व संग्रहालय, बिलासपुर.*

नरेश कुमार पाठक - *संग्रहाध्यक्ष, केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर.*

आर. एन. विश्वकर्मा - *व्याख्याता, भारतीय कला का इतिहास एवं संस्कृति विभाग, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़.*

भगवान महावीर : जीवन और सिद्धांत

डॉ. (श्रीमती) शोभा निगम

ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी न केवल भारत में वरन् दुनिया के अनेक देशों में धार्मिक क्रांति की शताब्दी थी। इसी शती में चीन में लाओत्से और कन्फ्यूशस, यूनान में पार्मेनाइडिज और एम्पीडोकलस, फारस में जरथुस्त्र और इजराइल में अनेक यहूदी पैगम्बर पैदा हुये। इसी काल में भारत भूमि में एक ओर उपनिषदों के ऋषि परमतत्त्व और आत्मा की खोज में व्याकुल थे तो दूसरी ओर दो महान धर्म, बौद्ध और जैन, के महापुरुष भी अपने-अपने धर्म के उपदेशों से एक नया इतिहास रच रहे थे। यद्यपि बुद्ध के समान महावीर जैन धर्म के संस्थापक तो नहीं थे, पर जैन धर्म के संवर्द्धन, सुधार, प्रचार और प्रसार का श्रेय उन्हें ही जाता है। जैन धर्म के 24 वें तीर्थंकर थे महावीर जो किसी युद्ध में विजयी होने के कारण महावीर नहीं कहलाये जैसा कि डॉ. राधाकृष्णन का कहते हैं, 'उनको जिन अर्थात विजेता कहा जाता है किन्तु वे सांसारिक युद्ध में अपना पराक्रम दिखाने वाले वीर न थे वरन् आंतरिक जीवन के द्वन्द्व में वीरता दिखाने वाले महावीर थे।[1]

महावीर का वास्तविक नाम वर्धमान था। उनका जन्म बुद्ध के जन्म से 32 वर्ष पूर्व 599 ई. पू. में वज्जि संघ के अंतर्गत कुण्डग्राम के ज्ञातृक क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के महल में हुआ था। इनकी माता का नाम त्रिशला था। दोनों ही प्रारंभ से ही निर्ग्रंथ धर्म (जो जैन धर्म का प्रारंभिक रुप है) के अनुयायी थे। कहते हैं महात्मा बुद्ध के समान महावीर के जन्म के समय भी देवज्ञों ने भविष्यवाणी की थी कि यह शिशु बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती राजा बनेगा या परमज्ञानी भिक्षु।[2] अस्तु, श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार परमज्ञानी भिक्षु बनने के पूर्व बुद्ध के समान आप भी वैवाहिक बंधन में बंधे। यशोदा नामक राजकन्या उनके जीवन में आई जिससे एक कन्यारत्न की भी उन्हें प्राप्ति हुई, पर यह बंधन प्रारंभ से ही चिंतनशील वर्धमान के लिए बहुत कठोर साबित नहीं हुआ। अंततः माता-पिता की मृत्यु के बाद करीब तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने बड़े भाई नंदिवर्द्धन की अनुमति लेकर गृहत्याग कर भिक्षु जीवन स्वीकार किया। वैसे दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर अविवाहित ही थे, तथा उन्होंने अपने माता-पिता के जीवन काल में और उनकी इच्छा के विरुद्ध गृहत्याग किया था।[3]

अस्तु, सन्यास ग्रहण के पश्चात् ज्ञान प्राप्त करने हेतु वर्धमान ने कठोर तपस्या प्रारंभ की। 'कल्पसूत्र' में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन इस प्रकार मिलता है, 'भिक्षु महावीर ने एक वर्ष और एक मास तक वस्त्र धारण किये परंतु इसके पश्चात् वे पूर्णतः नग्न रहने लगे। वे भोजन

भी हथेली पर ही ग्रहण करते। 12 वर्ष तक अपने शरीर की पूर्णतः उपेक्षा कर सभी प्रकार के कष्ट सहते रहे। उन्होंने संसार के सब बंधनों का उच्छेद कर दिया। संसार से वे सर्वथा निर्लिप्त हो गये। आकाश की भांति उन्हें किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं रही। वायु की भांति वे निर्बाध हो गये। शरदकाल के जल की भांति उनका हृदय शुद्ध हो गया। कमलपत्र की भांति वे किसी से भी लिप्त न होते थे। कछुए की भांति उन्होनें अपनी इन्द्रियों को वशीभूत कर लिया। गैंडे के सींग की भांति वे एकाकी हो गये। पक्षी की भांति वे स्वतंत्र हो गये।'

"आचारांग-सूत्र" में महावीर की इस बारहवर्षीय कठोर तपस्या का जो चित्र खींचा गया है वह इतना मार्मिक है कि बरबस ही हमारा हृदय इस नग्न महात्मा के प्रति करुण होते हुये श्रद्धावनत् हो जाता है। इसमें कहा गया है, "महावीर एक वर्ष और एक माह तक वस्त्र पहने रहे। अंततः वे वस्त्र जीर्ण-शीर्ण होकर गिर पड़े। अब उन्होनें नग्न रहना प्रारंभ कर दिया। उनके नग्न शरीर पर अनेक प्रकार के कीट-कीटाणु चढ़ने लगे और उन्हें काटने लगे। परंतु वे पूर्णतः उदासीन रहे। जब वे ध्यान मग्न और नग्न इधर-उधर घूमते तो उन्हे देखकर लड़कों का झुंड उनके पीछे दौड़ता, शोर मचाता और उन्हें मारता। बहुत से दुष्ट बच्चे तो उन्हें डण्डों से पीटते भी थे। परंतु फिर भी वे निर्लिप्त पूर्ण मौन और शांत रहते थे।"

अंततः आत्मनिग्रह की तैयारी हेतु की गई यह तपस्या सफल हुई। जाम्भियगाम (जुम्भिका) के समीप उज्जुवालिया (ऋजुपालिक) नदी के तट पर उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। तभी उन्हे 'केवलिन' की उपाधि मिली। इसके पश्चात् उन्हें सर्वज्ञरुप माना जाने लगा और वे 'जिन' भी कहलाये क्योंकि उन्होंने अपनी इन्द्रियों को पूर्णतः जीत लिया था। बारह वर्ष की यह कठोर तपस्या कोई सामान्य घटना नहीं थी, यह महान वीरता की बात थी, इसीलिए वे महावीर भी कहलाये। बौद्ध साहित्य में अनेक स्थानों पर उन्हें 'निगण्ठ नाटपुत्र' (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र) कहा गया है। निर्ग्रन्थ इसलिए क्योंकि उन्होनें समस्त सांसारिक बंधनों (ग्रंथियों) को तोड़ दिया था, ज्ञातपुत्र इसलिए कि वे ज्ञातक राजा के पुत्र थे।

किन्तु इस तरह कैवल्य प्राप्त कर निर्ग्रन्थता को प्राप्त होकर महावीर के जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं हो गया, बल्कि अब उनका कर्म क्षेत्र प्रारंभ हुआ। बुद्ध के समान उन्होंने भी केवल अपनी मुक्ति के हेतु इतनी कठोर तपस्या नहीं की थी बल्कि उनके भी जीवन का उद्देश्य था, काम, क्रोध, मद, ममत्व से ग्रस्त दुःखी एवं जन्मजन्मान्तर में भटकती जीवात्मा को मोक्ष का मार्ग दिखाना, इस मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करना। अतः इस हेतु उन्होंने तपस्वियों की एक संस्था संगठित की। बुद्ध के समान उनके विचारों का भी कई तत्कालीन राजाओं ने खुले दिल से स्वागत

किया। यह आश्चर्य की ही बात कही जायेगी कि जिसने सब कुछ त्याग दिया हो और जो सबकुछ त्याग का उपदेश दे रहा हो, उसका वे क्षत्रिय राजागण स्वागत करें, जिनके लिये पूरी वसुन्धरा भोग्या होती है। कहते हैं महावीर को अपने मातृपक्ष से संबंधित राजपरिवारों से अपने धर्म के प्रचार में बड़ी सहायता मिली थी।

किन्तु महावीर ने किसी नये धर्म का प्रचार नहीं किया था, जैसा कि हमने प्रारंभ में ही देखा है, महावीर के पूर्व से ही जैन धर्म भारतभूमि में प्रचलित था। उनके पूर्व 23 तीर्थंकर हो चुके थे, विशेषकर 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ, जो उनके जन्म से करीब पौने दो सौ वर्ष पूर्व अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर चुके थे, लोगों की स्मृति में विशेषकर अपने अनुयायियों के मध्य अपने विचारों सहित विद्यमान थे। जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म के संस्थापक श्री ऋषभदेव थे जो भारतवर्ष में तब उत्पन्न हुए थे जब यहाँ सभ्यता का प्रारंभ भी नहीं हुआ था। डॉ.राधाकृष्णन' के अनुसार इस प्रकार के पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं कि जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि ईसा के एक शताब्दी पूर्व भी ऐसे लोग थे जो ऋषभदेव की पूजा करते थे तथा भागवत पुराण के इस मत का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन मत के संस्थापक थे।

अस्तु, भगवान महावीर ने कैवल्य प्राप्ति के बाद लगभग तीस वर्ष तक अपने उपदेशों से दु:खी बंधनग्रस्त जीव को मुक्ति का मार्ग दिखाया और इस तरह जैन धर्म का भारत भूमि में प्रचार और प्रसार हुआ। 6_ वर्ष की अवस्था में बिहार के पावापुरी वन में कार्तिक कृष्ण अमावस्या को उन्होने अपने शरीर का त्याग किया। महावीर स्वामी ने इस काल में जो उपदेश दिये उनका संकलन प्राकृत भाषा में रचित 'आचारांग-सूत्र' में मिलता है।

महावीर स्वामी के सिद्धांत - अन्य भारतीय दर्शनों के समान महावीर स्वामी के जैन दर्शन एवं धर्म का उद्देश्य भी मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति करना है अर्थात् सभी प्रकार के दुखों से हमेशा के लिए छुटकारा प्राप्त कराना। इस हेतु यहां पहले बंधन पर विचार किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार शरीर ग्रहण करना ही हमारा बंधन है। परन्तु जीवात्मा शरीर क्यों धारण करती है ? इसका कारण जैन दर्शन में पूर्वजन्म के संस्कार बताये गये हैं, जो जीव के पूर्व जन्मों के कर्मफलों के कारण निर्मित होते हैं और जो जीव के साथ मृत्यु के बाद भी बने रहते हैं। जीव का अगला जन्म अर्थात् शरीर इन संस्कारों (कर्मफल) के अनुसार ही निर्धारित होता है। जीवात्मा को बार-बार बंधन में डालने वाले संस्कारों को 'कषाय' कहा गया है। इनमें मुख्य रूप से क्रोध, लोभ, मोह, गर्व की कुप्रवृत्तियां आती हैं। ये चारों वस्तुतः जीव की तृष्णाएं हैं।

ये 'कषाय' पुद्गल कणों (भौतिक तत्वों) को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और इस तरह जीव का शरीर बनता है। 'कषाय' का अर्थ होता है ऐसा चिपचिपा पदार्थ जिसमें दूसरे पदार्थ आसानी से चिपक जायें, जैसे- एक गीले कपड़े में धूल के कण आसानी से चिपक जाते हैं। इस तरह बंधन का मुख्य कारण 'कषाय' ही है। जैन दर्शन में 'कषाय' की ओर पुद्गल (भौतिक पदार्थ) का आना ही आश्रव है।

बंधन के कारण की खोज से बंधन से मुक्ति का उपाय जानना आसान हो जाता है। जैन दर्शन मानता है कि अच्छा हो कि जीवात्मा अपने शुद्ध रूप में ही रहे - पुद्गलों का उसकी ओर आकृष्ट होना बंद हो जाये । इस हेतु वह दो उपाय बताता है - 1. संवर 2. निर्जरा। 'संवर' का अर्थ है नये पुद्गलों का आश्रव बंद होना - ताकि भविष्य में शरीर का बंधन उत्पन्न न हो और 'निर्जरा' का अर्थ है जीव में पहले से प्रविष्ट पुद्गलों का जीर्ण होना क्योंकि यदि ये जीर्ण नहीं होंगे तो मृत्योपरांत भी जीवात्मा से चिपके रहेंगे और फिर उसे नया शरीर ग्रहण करने बाध्य करेंगे। इस तरह हम देखते हैं कि मोक्ष प्राप्ति हेतु संवर और निर्जरा दोनों ही आवश्यक है। अन्य शब्दों में बंधन के नाश हेतु हमें क्रोध, लोभ आदि अपनी कुप्रवृत्तियों को छोड़ना होगा। [5]

अस्तु, यह तो हुई जैन दर्शन की सैद्धांतिक बात। मुख्य बात व्यावहारिक है अर्थात् यह जानना कि वे साधन क्या हैं जिन्हें अपना कर हम संवर और निर्जरा को संभव बना सके और इस तरह मोक्ष प्राप्त कर सके। इस हेतु जैन धर्म त्रिरत्न और पंचमहाव्रत को साधन के रूप में प्रस्तुत करता है।

त्रिरत्न - मोक्ष प्राप्ति मे आवश्यक भूमिका निभाने वाले तीन रत्न हैं - सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र। सम्यक् दर्शन का अर्थ है - जैन धर्म के उपदेष्टाओं के प्रति श्रद्धा एवं उनके वचनों की सत्यता पर पूर्ण विश्वास। किंतु श्रद्धा का अर्थ यहाँ अंध-श्रद्धा और विश्वास का तात्पर्य अंध-विश्वास नहीं है। हमें उपदेष्टाओं की बातों को बिना सोचे समझे नहीं मान लेना चाहिए, हमें विचारों में युक्तियुक्तता पर ध्यान देना चाहिए जैसा कि जैन दार्शनिक मणिभद्र लिखते हैं 'न मेरा महावीर के प्रति कोई पक्षपात है और न कपिल या अन्य दार्शनिकों के प्रति कोई द्वेष ही है। मैं युक्ति संगत वचन को ही मानता हूँ चाहे वह जिस किसी का हो।' [6]

जैन धर्म में 'सम्यक् दर्शन' को त्रिरत्नों में पहला स्थान दिया गया है, वह इसलिए क्योंकि इसके अभाव में सम्यक् ज्ञान संभव नहीं है और सम्यक् ज्ञान के अभाव में सम्यक् चरित्र संभव नहीं है। [7] इस तरह यह मोक्ष का प्राथमिक आधार है।

दूसरा रत्न 'सम्यक ज्ञान' है। इसके बिना बंधन का नाश असंभव है। सम्यक ज्ञान, जीव और अजीव तत्व की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान है। इस ज्ञान के अभाव में क्रोध लोभ आदि कषायों का नाश होना संभव नही है और इसके बिना बंधन का नाश भी नहीं हो सकता। अतः सम्यक ज्ञान अत्यंत महत्व रखता है।

तीसरा रत्न 'सम्यक चरित्र' है। इसका अर्थ है अहितकर कार्यों का वर्जन तथा हितकारी कार्यों का आचरण। वस्तुतः इस तीसरे रत्न के बिना शेष दो रत्नों की उपलब्धि व्यर्थ है।

यह सम्यक चरित्र कैसा होता है - इस पर पंचमहाव्रत के अंतर्गत प्रकाश डाला गया है -

पंचमहाव्रत - जैन धर्म के अनुसार पंच महाव्रत वे व्रत हैं जिनके पालन के बिना जीव कदापि मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता। ये पंच महाव्रत हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह।

जैन धर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधारभूत नैतिक गुण 'अहिंसा' है। अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है 'अवध' अर्थात किसी भी जीव की हिंसा न करना। वस्तुतः जैन दर्शन जीव की चेतना के सातत्य में विश्वास रखता है। वह मानता है कि प्रत्येक जीवात्मा इस संसार में उच्चतर चेतना की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील है। अतः हमें किसी भी प्राणी की हत्या करने का कोई अधिकार नही है। जैन धर्म में अहिंसा व्रत के पालन के लिए पानी को छानकर पीने, मुंह में कपड़ा बांधकर बात करने, जमीन पर प्रत्येक कदम देखकर रखने, आलू-प्याज जैसे जमीन के भीतर से निकाले जाने वाले कंदों को न खाने आदि के नियम को इस व्रत का चरम रुप बताते हैं। कुछ लोग इसे अति मानकर जैन धर्म की आलोचना भी करते हैं किंतु अति की हद तक पहुंचकर इस प्रकार अहिंसा की शिक्षा देने का कारण था और इसके लाभ भी थे। एक कारण तत्कालीन वैदिक यज्ञों में होने वाली हिंसा का विरोध था। उल्लेखनीय है कि जैन, बौद्ध तथा अन्य श्रमण विचारक, वैदिक यज्ञों में दी जाने वाली बली प्रथा के कठोर आलोचक थे जिससे जन सामान्य भी त्रस्त्र हो उठा था। इस हिंसा के खिलाफ ही जैन धर्म में कठोरतापूर्वक अहिंसा व्रत को लागू किया गया था। जहाँ तक इस व्रत के लाभ की बात है, अहिंसा केवल अन्य जीवों को हिंसक द्वारा किये जाने वाले कष्टों से ही नहीं बचाती, यह अहिंसा व्रती के मानस के लिये ही लाभकारी होती है। यह उसे शुद्ध बनाती है। वस्तुतः हिंसा की भौतिक क्रिया मानस से जुड़ी है, जैसा कि एस. गोपालन लिखते हैं 'हिंसा का अर्थ लापरवाही या उपेक्षा से प्राणियों को चोट पहुँचाना है, और यह घमंड, दुराग्रह, आसक्ति तथा घृणा जैसी वृत्तियों के कारण होता है।'[1]

किन्तु जैन धर्म में अहिंसा का केवल निषेधात्मक अर्थ (हिंसा न करना) ही नहीं लिया गया है। न ही यहां से केवल शाब्दिक अर्थ पर जोर है। यहां अहिंसा का तात्पर्य है, मन, वचन और कर्म से अहिंसक होना। इसके अतिरिक्त यहाँ अहिंसा का विधेयात्मक अर्थ, जीवमात्र के प्रति प्रेम और दया की भावना भी बताया गया है।

पंचमहाव्रत का दूसरा प्रमुख व्रत 'सत्य' है। सत्य वचन का अर्थ है; जो वस्तु जिस रूप में विद्यमान है उसे उसी रूप में कहना। इस तरह सत्य वचन से मिथ्यावचन का त्याग भी सम्मिलित है। किंतु सत्य का अर्थ केवल इतना ही नही है। सत्यवचन हितकारी और प्रिय भी होना चाहिये। जैन धर्म में सत्य के लिये 'सूनृत' शब्द का प्रयोग भी किया गया है, जिसका अर्थ है जो सबका हितकारी हो, जो सबका प्रिय हो। किंतु ऐसा सत्यव्रती बनना सरल नहीं है। इसके लिये मनुष्य को लोभ, डर और क्रोध से दूर रहना चाहिये। सत्यव्रती कई बार वाचाल बन जाता है अन्य लोगों का उपहास करता है किंतु सत्यव्रती को ऐसी प्रवृत्ति से बचना चाहिए। जैन दर्शन में पांच अतिचारों से सत्यव्रती को सावधान किया गया है। ये पांच अतिचार हैं - किसी का निंदा करना। किसी की गुप्त बात का प्रकाशन करना। किसी के विश्वास को हिलाना। किसी को मिथ्या उपदेश देना। झूठी गवाही देना। जैन दर्शन में असत्य बंधन कारी माना गया है जबकि सत्य मुक्त करने वाला। अतः मुमुक्षु को सत्य को व्रत के रूप में ग्रहण करना आवश्यक है।

पंचव्रत का तीसरा महाव्रत है 'अस्तेय'। इसका अर्थ किसी दूसरे की संपत्ति को बिना उसकी आज्ञा अथवा इच्छा के ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा करना। 'स्तेय' कर्म हिंसक कर्म है क्योंकि इसके द्वारा चोर दूसरे के धन का अपहरण करता है। धन किसी व्यक्ति के बाह्य जीवन होता है। ऐसी स्थिति में धन चुराकर चोर व उसके बाह्य जीवन को नष्ट कर एक तरह से उसकी हिंसा करता है। उल्लेखनीय है कि जैन धर्म में केवल चोरी न करना ही अस्तेय नहीं है। यहां पराई वस्तु को चुपचाप ग्रहण करने की इच्छा मात्र को भी स्तेय माना गया है। इसलिए आचार्य कुंदकुंद अस्तेयव्रती उसे कहते हैं -

ग्रामे वा नगरे वाऽरण्ये वा प्रेक्षयित्वा परमर्थम्।
यो मुंचति ग्रहणं भावं तृतीय व्रतं भवति तस्यैव॥ [9]

अर्थात जो पुरुष ग्राम में, नगर में या वन में पराई वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने के भाव का त्याग करता है, वही वास्तव में इस तीसरे व्रत का व्रती होता है।

नाप-तौल में गड़बड़ी करना, चोरी का माल खरीदना, कम कीमत की वस्तु अधिक में बेचना, कालाबाजारी करना आदि भी चौर्य कर्म माने गये हैं।

जैन धर्म का चौथा महाव्रत है, 'ब्रह्मचर्य' । इस व्रत के पालन करने का अर्थ है समस्त वासनाओं का परित्याग करना । इसके पालन से समस्त इन्द्रियां नियंत्रण में रहती है जिससे जीव आसक्ति मोह आदि कुप्रवृत्तियों से बचता है । व्रत के रूप में महावीर स्वामी ने ही जैन धर्म में सम्मिलित किया था । पार्श्वनाथ ने केवल चार व्रतों अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह को ही महाव्रत स्वीकार किया था ।

जैन धर्म का पांचवा महाव्रत 'अपरिग्रह' है जिसका अर्थ है किसी भी वस्तु पर आसक्त होकर उसका अनावश्यक संग्रह न करना । यह व्रत हमारी आसक्ति और लोभ को रोकता है । उल्लेखनीय है कि महावीर स्वामी ने अपरिग्रह पर अत्यंत बल दिया था । अपरिग्रह पर बल देने के कारण ही उन्होनें वस्त्र के त्याग की बात की थी, क्योंकि वस्त्रों को पहनना, उन्हें रखना भी संग्रह है ।[10]

परिग्रह की भावना व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होने में बाधक होती है । बाह्य जगत की समस्त वस्तुएं अजीव तत्व हैं । इनसे मोह रखकर जीव अधिकाधिक बंधन ग्रस्त तो होगा ही । किंतु केवल बाह्य वस्तुओं के संचय को ही जैन धर्म में परिग्रह नहीं कहा गया है । यहाँ परिग्रह का तात्पर्य वस्तुओं और प्रियजनों के प्रति ममत्व की भावना भी है । वस्तुतः यह भावना ही ज्यादा घातक होती है । सच्चा अपरिग्रही तो वह है जिसके पास कुछ भी नहीं है और जो किसी वस्तु की मन से इच्छा भी नहीं करता ।

उपरोक्त पंचमहाव्रतों के अतिरिक्त जैन धर्म में दस धर्मों के पालन पर भी जोर दिया गया है - 1. क्षमा, 2. मार्दव (कोमलता), 3. आर्जव (सरलता), 4. सत्य, 5. शौच (शरीर और आत्मा की शुद्धि), 6. संयम, 7. तप, 8. त्याग, 9. आकिंचन्य (किसी पदार्थ पर ममता न रखना), 10. ब्रह्मचर्य ।

इस तरह हम देखते हैं कि जैन धर्मानुसार त्रिरत्न, पंचमहाव्रत तथा दस धर्मों के पालन से जीव के बंधन का नाश हो जाता है, उसके सारे दुःख समाप्त हो जाते हैं तथा उसे पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता । इस तरह जीव कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्त करता है ।

वस्तुतः महावीर स्वामी के जीवन का, उनके धर्म और दर्शन का उद्देश्य जीव मात्र को मोक्ष का मार्ग दिखाना ही था । इसीलिये तो वे तीर्थंकर कहलाये । तीर्थंकर का अर्थ ही होता है वह साधु पुरुष जो ऐसे निमित्त (तीर्थ) का निर्माण करें जो अन्यों को संसार सागर से पार उतारे । अंत में हम कह सकते हैं कि सच्चा जैन होने के लिए जैन परिवार में जन्म लेना या जैन धर्म की ऊपरी तौर पर दीक्षा लेने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है भगवान महावीर स्वामी द्वारा

बतलाये उपर्युक्त तीर्थ को आलंबन लेकर संसार सागर को पार करने की कोशिश करना। हर वह व्यक्ति जो इस आलंबन को ग्रहण करता है, निश्चय ही जैन है, भले ही वह बाह्य रुप में कुछ भी प्रतीत हो।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. एस. राधाकृष्णन , **हमारी संस्कृति**, पृ. 86.
2. कल्पसूत्र और सूत्रकदंग के अनुसार
3. एस. गोपालन, **जैन दर्शन की रुपरेखा**, पृ. 24.
4. एस. राधाकृष्णन , **भारतीय दर्शन**, भाग - 1, पृ. 233.
5. यदि मोक्ष प्राप्त करना है तो निम्न श्रेणी की प्रकृति का उच्चतर आत्मा के द्वारा दमन किया जाना आवश्यक है। जब जीवात्मा उस बोझ से मुक्त होती है जो उसे नीचे की ओर दबाये हुये है तो वह विश्व के उपर शिखर तक उड़ जाती है जहां मुक्तात्माओं का निवास है। अंतरात्मा में निरंतर परिवर्तन होने से ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। डॉ. राधाकृष्णन, **भारतीय दर्शन**, भाग - 1, पृ. 228.
6. षड्दर्शन सम्मुचय पर टीका
7. उत्तराध्ययन सूत्र, पृ. 28-30
8. एस. गोपालन, जैन दर्शन की रुपरेखा, पृ. 148.
9. नियमसार, पृ. 58.
10. जिस सीमा तक हम भेद-भावों के प्रति सचेत रहते हैं तथा लज्जा का भाव भी हमारे अंदर रहता है, उसी सीमा तक हम मुक्ति से दूर रहते हैं।
    डॉ. राधाकृष्णन, **भारतीय दर्शन**, भाग - 1.

प्रतिमा विज्ञान और शिल्प में भगवान महावीर

डॉ. लक्ष्मीशंकर निगम

जैन धर्म का केन्द्रीय अवधारणा 24 तीर्थंकरों अथवा जिनों पर आधारित है। तीर्थंकर, ईश्वर के अवतार न होकर ऐसे महापुरुष हैं, जो तपस्या की शक्ति से, अनेकानेक विकारों को अपने नियंत्रण में करके अपनी आत्मा को शुद्ध करते हैं। इन तीर्थंकरों के नाम के अन्त में 'नाथ' पद का प्रयोग किया जाता है। तीर्थंकरों के नाम निम्नानुसार हैं - 1. ऋषभनाथ (आदिनाथ या वृषभनाथ) 2. अजितनाथ 3. संभवनाथ 4. अभिनन्दन नाथ 5. सुमतिनाथ 6. पद्मनाथ 7. सुपार्श्वनाथ 8. चन्द्रप्रभ 9. पुष्पदत्त (सुविधिनाथ) 10. शीतलनाथ 11. श्रेयांसनाथ 12. वासुपूज्य 13. विमलनाथ 14. अनन्तनाथ (अनन्तजित) 15. धर्मनाथ 16. शांतिनाथ 17. कुन्थुनाथ 18. अरनाथ 19. मल्लिनाथ 20. मुनि सुव्रत (सुव्रनाथ) 21. नमिनाथ 22. नेमिनाथ (अरेष्टिनेमि) 23 पार्श्वनाथ 24. महावीर (।

श्वेताम्बर परम्परा में 19 वें तीर्थंकर मल्ली को नारी तीर्थंकर माना गया है। दिगम्बर इसे स्वीकार नहीं करते क्योंकि उनके अनुसार कोई भी नारी मुक्ति के लिए सक्षम नहीं है।[1] जैन ग्रंथों में प्रत्येक तीर्थंकर से संबंधित विवरण विस्तृत रुप से मिलता है। इसमें तीर्थंकर का वर्ण, चिन्ह (लांछन), अनुचर-यक्ष-यक्षिणी, माता-पिता का नाम, जन्म, निर्वाण आदि का विवरण मिलता है। प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से इनके चिन्ह और अनुचर विशेष महत्व के होते हैं। इसके माध्यम से ही तीर्थंकर प्रतिमा का अभिज्ञान होता है। वस्तुत. शिल्पकारों को प्रतिमा-निर्माण के लिए ये लांछन एक दिशा-निर्देश का कार्य करते थे। प्रारंभिक जैन प्रतिमाओं में लांछनों का अभाव रहता था, इसलिए पाद-पीठ पर अभिलेख अंकित कर दिए जाते थे, जिससे प्रतिमा की पहचान हो सके।

कुछ तीर्थंकर प्रतिमाएँ अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण अलग से पहचान ली जाती हैं, जैसे ऋषभनाथ अथवा आदिनाथ को कन्धों तक लटकती केश राशि अथवा जटामुकुट[2] से, सुपार्श्वनाथ को पंचफणयुक्त सर्प तथा पार्श्वनाथ को सप्तफणयुक्त सर्प से पहचाना जाता है। गुप्तकाल में ही इसका व्यवस्थित विवरण मिलने लगता है और लगभग 9-10 वीं शताब्दी ई. तक इन लांछनों का पूर्ण विकास और निरूपण भारतीय कला में दिखाई देता है।

I

वर्तमान लेख में हम भगवान महावीर के प्रतिमा लक्षणों पर ही विचार कर रहे हैं। भगवान महावीर की प्रतिमाएँ, अन्य तीर्थंकरों के सदृश्य केवल दो ही स्थितियों में निर्मित की जाती है - खड़ी अथवा आसन। खड़ी प्रतिमा को खड्गासन अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा कहा जाता है जबकि आसन प्रतिमा को ध्यानस्थ प्रतिमा भी कहते हैं। वराह-मिहिर के अनुसार जिन प्रतिमाओं को तरुण, रुपवान, प्रशान्त व्यक्तित्व से सम्पन्न और वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह से युक्त दिखाया जाना चाहिए। अजानु लम्ब भुजाओं वाला उनका शरीर दिगम्बर (अर्थात् निग्रंथ या निर्वस्त्र) दिखाया जाना चाहिए।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि जिन प्रतिमाओं के जिन लक्षणों का विवरण दिया गया है, वह दिगम्बर प्रतिमाओं के संदर्भ में हैं अथवा इस समय तक वस्त्रयुक्त जिन प्रतिमा का प्रचलन नहीं हुआ था अन्यथा श्वेताम्बर परम्परा में जिन प्रतिमा को धोती सहित चित्रित किया जाता है।

भगवान महावीर के प्रतिमा लांछन के रुप में सिंह का अंकन मिलता है। इनके यक्ष-यक्षिणी क्रमशः मातंग और सिद्धायिका हैं। यक्ष-मातंग गज पर आरुढ़ पर प्रदर्शित किया जाता है। दिगम्बर परम्परा में इसका एक हाथ वरद की मुद्रा में तथा दूसरे हाथ में मातुलिंग रहता है। श्वेताम्बर परम्परा में एक हाथ में नकुल और दूसरे हाथ में मातुलिंग होता है।

महावीर की यक्षिणी-सिद्धायिका हैं। उसे सिद्धायिनी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। दिगम्बर परम्परा में सिद्धायिका सिंहवाहिनी है। उसका दायां हाथ वरद (अथवा अभय) मुद्रा में तथा बांये हाथ में पुस्तक रहती है। श्वेताम्बर परम्परा में इसे चतुर्भुजी प्रदर्शित किया जाता है जबकि बांये हाथ में पाश और कमल का चित्रण रहता है। कभी-कभी बांये हाथ में वीणा का अंकन भी मिलता है।

जैन प्रतिमा विज्ञान में पंचकल्याणक का अंकन उल्लेखनीय है। ये पंच-कल्याणक 1. गर्भ कल्याणक, 2. जन्म कल्याणक, 3. तप कल्याणक, 4. ज्ञान कल्याणक एवं 5. निर्वाण कल्याणक के रुप में जाने जाते हैं। ये तीर्थंकर के जीवन की प्रमुख पांच घटनाओं के परिचायक हैं। भगवान महावीर के जीवन से संबंधित इन घटनाओं का चित्रण भी भारतीय कला में दिखाई देता है।

II

जैन अनुश्रुति के अनुसार भगवान महावीर की काष्ठ मूर्ति उनके जीवनकाल में ही गढ़ ली गई थी जब वे वैराग्य ग्रहण करने के पूर्व अपने महल में ध्यान किया करते थे। कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानमग्न खड़े और धोती, मुकुट एवं अन्य अलंकरण धारण किए यह प्रतिमा जीवन्तस्वामी

की मूर्ति कहलाती है। अशोक के पौत्र सम्प्रति ने विदिशा में दीक्षा ग्रहण, जीवन्त स्वामी के रथयात्रा समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था। इससे यह स्पष्ट होता है कि महावीर की मूर्ति उनके जीवनकाल में निर्मित कर ली गई थी और सम्प्रति के समय तक उसकी पूजा-अर्चना की जाती थी।[4] जीवन्त स्वामी की प्रतिमाएँ गुप्त काल में निर्मित होने के कारण पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं। जैन परम्परा के अनुसार वस्त्राभूषण से सुसज्जित महावीर का यह रूप दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व का है।[5]

भारतीय कला में तीर्थंकर प्रतिमा के प्राचीनतम उदाहरण के रूप में पटना के निकट लोहानीपुर से प्राप्त प्रतिमा को स्वीकार किया जाता है। यह प्रतिमा का काल ई. पू. तीसरी शताब्दी निर्धारित किया जाता है। इस प्रतिमा का केवल धड़ ही प्राप्त हुआ है। सिर, हाथ और पैर भग्न हैं। इसी प्रकार शुंग-कुषाण काल की चौसा (जिला भोजपुर, बिहार) एवं मथुरा के भी अनेक तीर्थंकर प्रतिमाएँ मिली हैं। इनमें से मथुरा से मिली सात मूर्तियों की पीठिका में वर्द्धमान अथवा महावीर का नाम उत्कीर्ण है।[6] गुप्तकालीन प्रतिमाओं में पूर्वी भण्डार गुफा में दो प्रतिमाएँ महावीर की हैं। मध्यप्रदेश के पन्ना जिले में नचना के निकट सीरा पहाड़ी से महावीर की पद्मासन मुद्रा में प्रतिमा प्राप्त हुई है। अकोटा (गुजरात) से जीवन्त स्वामी की दो कांस्य प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

गुप्तोत्तर काल से लेकर लगभग 13-14 वीं शताब्दी ई. के मध्य अन्य तीर्थंकर मूर्तियों के साथ ही भागवान महावीर की प्रतिमाएँ सम्पूर्ण देश के महत्वपूर्ण जैन पुरातात्विक स्थलों से प्राप्त हुई है। यह प्रतिमाएं दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्परा में निर्मित की गई हैं। इसमें परिकर, यक्ष-यक्षी के अतिरिक्त विद्याधर, उपासकों का भी अंकन मिलता है। यद्यपि महावीर की अधिकांश प्रतिमाओं के निर्माण में जैन प्रतिमा-विज्ञान के निर्देशों का पालन किया गया है परन्तु इसमें विविधता भी परिलक्षित होती है। कभी-कभी परम्परा से हटकर यक्ष-यक्षी का चित्रण भी किया गया है। यक्षों में सर्वानुभूति, गोमुख यक्ष तथा यक्षियों में पद्मावती, चक्रेश्वरी, अम्बिका आदि का अंकन में मिलता है। इस प्रकार की प्रतिमाएं से ज्ञात होता है कि शिल्पशास्त्रों एवं प्रतिमा विज्ञान के शास्त्रीय ग्रंथों के दिए गए उल्लेख से शिल्पी पूरी तरह बंधा नहीं था। जैन धर्म के सर्वाधिक प्रतिष्ठित तीर्थंकर महावीर की प्रतिमा निर्माण में वह अन्य शासन-यक्ष और शासन यक्षियों का प्रयोग भी करता था। जो जैन धर्म के भीतर ही समन्वय एवं कला वैशिष्ट का परिचायक है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. अमलानन्द घोष (सम्पादक), **जैन कला एवं स्थापत्य**, खण्ड - 1, अध्याय - 2, *पृष्ठभूमि और परम्परा* (लेखक- मधुसूदन नरहर देशपाण्डे), पृ. 17, उपरिवत, खण्ड-3, अध्याय- 35, *मूर्तिशास्त्र* (लेखक- उमाकान्त प्रेमानन्द शाह), पृ. 484.
2. सामान्यतः ऋषभनाथ की प्रतिमाओं में केशवल्लरियों का अंकन मिलता है। इसके साथ ही उनके लांछन वृषभ का अंकन नियमित रुप से किया जाने लगा क्योंकि 8वीं शताब्दी ई.के पश्चात् दिगम्बर स्थलों में ऋषभनाथ के अतिरिक्त अन्य जिन प्रतिमाओं में भी जटाएं प्रदर्शित की जाने लगीं। देखिए, मारुतिनन्दन तिवारी एवं कमल गिरि, **मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण**, वाराणसी, 1997, पृ. 268.
3 वराहमिहिरकृत **बृहत्संहिता**, 58, 45.
4. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, *मूर्तिशास्त्र* (अध्याय- 35), **पूर्व उद्धृत**, पृ. 480 एवं ए *यूनिक इमेज ऑफ जीवन्त स्वामी*, **जर्नल ऑफ द ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट**, 1 (1951-52), पृ. 72-79.
5 मारुतिनन्दन तिवारी एवं कमल गिरी, **मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण**, पृ. 300.
6 लखनऊ संग्रहालय, जे 2,14, 16, 22, 31, 53, 66. मारुतिनन्दन तिवारी एवं कमल गिरि, **पूर्व उद्धृत**, पृ. 300 एवं पृ. 318 पा.टि. 12 से उद्धृत.

छत्तीसगढ़ में जैन धर्म एवं कला का सर्वेक्षण

डॉ. लक्ष्मीशंकर निगम

भारतवर्ष के 26 वें राज्य के रुप में गठित छत्तीसगढ़ के अंतर्गत रायपुर, बिलासपुर और बस्तर संभाग के 16 जिले सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र 17.46' उत्तरी अक्षांश से 24.06' उत्तरी अक्षांश तक तथा 80 15' पूर्वी देशांश से 84.51' पूर्वी देशांश तक विस्तृत है, जिसका क्षेत्रफल 1,35,133 वर्ग किलोमीटर है।

छत्तीसगढ़ का अधिकांश भू-भाग प्राचीनकाल में कोसल जनपद के रुप में विख्यात था। उत्तर कोसल (अयोध्या-श्रावस्ती) से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए इस क्षेत्र को दक्षिण कोसल के नाम से संबोधित किया जाने लगा। दक्षिण कोसल के अंतर्गत वर्तमान मध्यप्रदेश का रायपुर-बस्तर संभाग और उड़ीसा राज्य का संबलपुर-कालाहाण्डी-बलांगीर क्षेत्र सम्मिलित था। मध्यप्रदेश का बस्तर और उड़ीसा का कोरापुट क्षेत्र प्राचीन काल में कान्तार, महाकान्तार, दण्डकारण्य के नाम से ज्ञात था। बस्तर क्षेत्र के लिए चक्रकोट नाम भी प्रचलित था। इस प्रकार वर्तमान छत्तीसगढ़ के अंतर्गत प्राचीन दक्षिण कोसल और कान्तार (दण्डकारण्य) का अधिकांश भाग (उड़ीसा में स्थित हिस्सों को छोड़कर) समाहित है।

छत्तीसगढ़ में जैन धर्म के प्रादुर्भाव के संबंध में स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है। सरगुजा जिले में स्थित रामगढ़ की गुफा में उत्कीर्ण भित्ति-चित्रों को जैन धर्म से संबंधित किया जाता है। इनमें से एक चित्र में पद्मासन में बैठे व्यक्ति का अंकन किया गया है। रायकृष्णदास [1] यहाँ के कुछ चित्रों का विषय जैन धर्म से स्वीकार करते हैं। मुनि कांतिसागर [2] का मत है कि श्री उग्रादित्याचार्य ने अपना कल्याणकारण नामक वैद्यक ग्रंथ की रचना संभवतः इसी रामगिरी (रामगढ़) में की थी। यदि इन मतों को स्वीकार कर लिया जाये तो रामगढ़ की प्राचीनता के आधार पर यह मानना उपयुक्त होगा कि लगभग द्वितीय-तृतीय शताब्दी ई. पू. में जैन मत का आगमन इस क्षेत्र में हो गया था। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में, छत्तीसगढ़ क्षेत्र में जैन-धर्म की स्थिति का परिचय देने वाली सामग्रियों की अल्पता है किन्तु यह तथ्य सिर्फ जैन धर्म के संदर्भ में ही नही वरन् कतिपय अपवादों को छोड़कर अन्य सभी धर्मों के संबंध में कहा जा सकता है।

रायपुर जिले में स्थित आरंग नामक स्थल जैन धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ से भीमसेन द्वितीय नामक राजा का ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। इस ताम्रपत्र के आधार पर राय बहादुर हीरालाल [3] का कथन है, *"रायपुर जिले के आरंग नामक स्थान से एक प्राचीन वंश के राज्य का पता चलता है, जिसे राजर्षितुल्य कहते थे। यदि इसका संबंध खारवेल से रहा हो तो समझना चाहिए कि खारवेल का वंश सैकड़ों वर्ष चला।"* इस संबंध में उल्लेखनीय है कि हाथीगुफा

अभिलेख [4] में खारवेल के लिए "राजसिवसुकुल विनिसृत" शब्द का प्रयोग किया गया है, जबकि आरंग ताम्रपत्र [5] में "राजर्षितुल्य कुल" शब्द प्रयुक्त है। ये उपाधियाँ वंश का परिचायक है अथवा उनका प्रयोग विशेषण के रूप में किया, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। बालचन्द्र जैन [6] ने उड़ीसा की एक अनुश्रुति के आधार पर खारवेल के पूर्वज ऐल (ऐर) के कोसल से खण्डगिरि (कलिंग) आने की कथा का उल्लेख किया है। उन्होंने भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता के संग्रह में 14वीं शताब्दी ई. की एक उड़ीया पाण्डुलिपि के आधार पर यह तथ्य स्वीकार किया है। इस प्रकार खारवेल और राजर्षितुल्य कुल के मध्य संबंधों की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में राज्य करने वाले दो प्रतिष्ठित राजवंशों, शरभपुरीय एवं पाण्डुवंशियों के काल में जैन धर्म का पर्याप्त विकास हुआ, जिसकी पुष्टि मल्हार और सिरपुर से प्राप्त पुरावशेषों से होती है। कालान्तर में छत्तीसगढ़ में कलचुरि साम्राज्य की स्थापना हुई। यद्यपि पाण्डुवंश और कलचुरिवंश के मध्य कुछ अंतराल है किन्तु प्रस्तुत लेख में राजनीतिक इतिहास का विवरण दिया जाना अभीष्ठ नहीं है। कलचुरिकालीन पुरावशेष बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि जैन धर्म कलचुरि काल में लोकप्रिय धर्म था। कलचुरि वंश के राजा जाजल्लदेव के शासनकाल के मल्हार शिलालेख (कलचुरि संवत 919-ई. 1167-68) [7] में उल्लेख है कि ब्राह्मण सोमराज जैनों के लिए यम के समान था। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में जैन धर्म से संबंधित अधिकांश पुरातात्विक सामग्री 12 वीं शताब्दी ई. तक की है और अभिलेखीय साक्ष्य में सोमराज का उल्लेख जैनों के लिए यम के समान किए जाने के आधार पर सामान्यत. यह धारणा विकसित हुई थी कि इसके पश्चात् जैन धर्म का पराभव छत्तीसगढ़ में हो गया होगा किन्तु यत्र-तत्र बिखरी सामग्री के अध्ययन के आधार पर इस अवधारणा को परिवर्तित किया जाना उपयुक्त प्रतीत होता है। मुनि कांतिसागर [8] ने डोंगरगढ़ के निकट बोरतलाब में एक मस्तकविहिन ऋषभदेव की अभिलिखित प्रतिमा का उल्लेख किया है, जिस पर "संवत 1548... .जीवरा.... डुंगराख्यनगरे.....नित्य प्रणमति" लेख उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में प्रयुक्त संवत् का नामोल्लेख नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि इसे विक्रम संवत् स्वीकार किया जो इस काल में प्रचलित लोकप्रिय संवत् था तो प्रतिमा का काल निर्धारण पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में किया जा सकता है। डोंगरगढ़ की पहाड़ी में प्राप्त पुरावशेषों का अध्ययन करते हुए मुनि कांतिसागर [9] ने विचार व्यक्त किया है कि ये कलाकृतियाँ कलचुरि काल की न होकर 15-16वीं शताब्दी की हैं क्योंकि कलात्मक दृष्टि से ये प्रतिमाएं गोंड़ कला से साम्य रखती हैं। इस प्रकार छत्तीसगढ़ अंचल में 15-16वीं शताब्दी ई. तक जैन धर्म के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

बस्तर अंचल में कलचुरियों के समकालीन नागवंश राज्य कर रहा था। धारण महादेवी के कुरुसपाल [10] में "जिनग्राम" का उल्लेख इस क्षेत्र में जैन धर्म के व्यापक प्रभाव का परिचायक है। बस्तर क्षेत्र से प्राप्त जैन पुरावशेष मुख्यतः नागवंशीय राजाओं के काल के हैं।

छत्तीसगढ़ के पुरावशेषों को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा रहा है, (1) मंदिर स्थापत्य और (2) प्रतिमाएं।

मंदिर स्थापत्य

छत्तीसगढ़ अंचल में जैन धर्म से संबंधित पुरा-सामग्री यत्र-तत्र बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होती है जिनसे स्पष्ट होता है कि यहाँ प्राचीनकाल में जैन धर्म से संबंधित मंदिर पर्याप्त संख्या में रहे होंगे किन्तु वर्तमान में पूर्णत संरक्षित एकमात्र मंदिर रायपुर जिले के आरंग नामक स्थल में स्थित है।

भाण्ड-देवल, आरंग Temple

आरंग में स्थित जैन मंदिर को भाण्ड-देवल के नाम से संबोधित किया जाता है। संभवत मंदिर की भग्नावस्था के कारण यह नामकरण हो गया होगा। इस मंदिर का निर्माण शैली के आधार पर 11वीं शताब्दी का स्वीकार किया जा सकता है। कृष्णदेव " के मतानुसार यह मंदिर प्रारंभिक कलचुरि शैली में स्थापत्य के भूमिज शैली को रुप देने के लिए महत्वपूर्ण है। मंदिर का विवरण निम्नानुसार है -

भू-विन्यास - पश्चिमाभिमुख इस मंदिर के गर्भगृह की योजना छः भद्रों से युक्त ताराकृति है। गर्भगृह का तल प्रवेश द्वार से कुछ निम्न स्तर पर है, जो तीन कदम वाले सोपान से संबद्ध है। गर्भगृह में भव्य परिकर सहित तीन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं स्थित हैं जो काले हरे (chlorit schist) पाषाण से निर्मित एवं ओपदार है। रतनपुर के कलचुरि काल में मूर्ति-शिल्प में इस प्रकार के पाषाण का प्रयोग किया जाता रहा है। मध्यभाग में स्थित प्रतिमा सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ की है, जिन्हें पादपीठ में अंकित दो मृगों से पहचाना जा सकता है। शांतिनाथ के दायीं ओर ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ की प्रतिमा स्थित है, जिनका प्रतीक गैंडा पादपीठ पर चिन्हित है। शांतिनाथ के बायीं ओर चौदहवें तीर्थंकर अनंतनाथ की प्रतिमा स्थित है, इसमें उनका लांछन श्येन पादपीठ पर उत्कीर्ण है। तीनों प्रतिमाएं निर्माण शैली की दृष्टि से एक समान हैं। इनके ऊपरी भाग में दोनों ओर चंवरधारी पुरुष आकृतियाँ त्रिभंग मुद्रा में अंकित हैं। प्रतिमा के दोनों पार्श्वों में पुरुष द्वारपाल तथा पादपीठ में यक्ष-यक्षिणियों का अंकन किया गया है। प्रतिमा में ऊपर की ओर त्रिछत्र एवं पुष्पमालाएं लिए विद्याधरों को प्रदर्शित किया गया है। गर्भगृह प्रवेशद्वार नष्ट हो गया है, मात्र देहली (doorsil) के कुछ अंश भाग शेष हैं।

अन्तराल एवं मण्डप - भू-योजना की दृष्टि से मंदिर का केवल गर्भगृह ही सुरक्षित है। गर्भगृह के सामने एक संकीर्ण अन्तराल उपलब्ध है। मंदिर का मण्डप अथवा मुख-मण्डप नष्ट हो गए हैं।

उत्सेध विन्यास - भाण्डदेवल मंदिर की उत्संध योजना में भू-तल से ऊपर की ओर जगती पीठ का निर्माण किया गया है जिसमें कमल-पत्र, गजधर, अश्वधर, नरधर दिखाई देते हैं। उसके ऊपर जाड्यकुंभ, कर्णिका और ग्रासपट्टी का अंकन है। जगतीपीठ के ऊपर अधिष्ठान में वज्र (हीरा) कुंभ, बेलबूटे तथा ज्यामितीय अंकन किया गया है। उसके ऊपर जंघा अत्यंत अलंकृत है। जंघा प्रक्षेपों तथा भीतर धंसे अन्तरालों से युक्त हैं जिसमें दो पंक्तियों में मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। प्रक्षेपों में जैन देवी-देवताओं, अप्सराओं आदि का अंकन है, जबकि अन्तरालों में कामरत मिथुन प्रतिमाएं, व्याल आदि का चित्रण है। जंघा के शिल्प में लालित्य, विविधता एवं कलात्मकता उच्चकोटि की है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है कि मंदिर छः भद्रों से युक्त है। इन भद्रों के आलों में जैन दिव्य पुरुषों का अंकन है।

मंदिर का शिखर भूमिज-शैली का है। शिखर की सज्जा कुछ आलों से की गई है जिसमें निचले भाग में आसीन यक्षियों और विद्यादेवियों की आकृतियाँ हैं और ऊपर के भाग में दो तीन पंक्तियाँ हैं जिसमें जैन-तीर्थंकर आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। आरंग का यह जैन मंदिर इस क्षेत्र में जैन स्थापत्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

अन्य मंदिर अवशेष - छत्तीसगढ़ क्षेत्र में उपलब्ध जैन प्रतिमाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यहाँ प्राचीन काल में अनेक जैन मंदिर रहे होंगे। वर्तमान में जैन मंदिर अस्तित्व में नहीं हैं किन्तु कुछ स्थानों में प्रतिमाओं के साथ स्थापत्य खण्ड भी मिलते हैं। जिसमें सिरपुर (जिला महासमुन्द), मल्हार एवं धनपुर (जिला बिलासपुर), महेशपुर (जिला सरगुजा), नगपुरा (जिला दुर्ग), कुर्रा एवं खरारा (जिला रायपुर) उल्लेखनीय हैं। रतनपुर के लक्ष्मीदेवी मंदिर में एक अभिलेख के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि यह जैन मंदिर रहा होगा। एक विशेष तथ्य उल्लेखनीय है कि छत्तीसगढ़ में विभिन्न स्थलों यथा रतनपुर, आरंग, रायपुर आदि में स्थित महामाया के मंदिरों में भी जैन प्रतिमाएं जड़ी हुई हैं। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि इन मंदिरों में जैन पुरावशेषों का प्रयोग हुआ होगा।

प्रतिमाएं

छत्तीसगढ़ में जैन धर्म से संबंधित अनेक प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। विभिन्न सामग्रियों में निर्मित ये मूर्तियाँ कला और शिल्प की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं। निर्माण-सामग्री की दृष्टि से सर्वाधिक प्रतिमाएं प्रस्तर निर्मित हैं, किन्तु कलाकारों ने इस हेतु विविध प्रकार के पाषाण का चयन किया है। अधिकांश पाषाण प्रतिमाएं बलुआ पत्थर से से निर्मित हैं किन्तु रतनपुर के कलचुरि के काल में काले-हरे पत्थर (chloriti schist) का प्रयोग भी किया गया है। सिरपुर से दो धातु की प्रतिमाएं मिली हैं, वहीं आरंग से रत्न (स्फटिक) की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। छत्तीसगढ़ के जैन मूर्ति-शिल्प को तीन खण्डों, यथा- प्रस्तर प्रतिमाएं, धातु प्रतिमाएं तथा स्फटिक की प्रतिमाओं का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

प्रस्तर प्रतिमाएं

जैन धर्म की केन्द्रीय अवधारणा 24 तीर्थंकरों की मान्यता और विश्वास पर आधारित है। ईसा के प्रारंभिक शताब्दियों के जैन ग्रंथों से 24 तीर्थंकरों को सूचीबद्ध किया जा चुका था। शिल्प में जिन प्रतिमा का निर्माण लगभग तीसरी शताब्दी ई. पू. से प्रारंभ हो गया था। कालान्तर में शुंग, कुषाण तथा गुप्त-वाकाटक काल की प्रतिमाएं देश के विभिन्न भागों में बड़ी संख्या में मिलने लगी।

छत्तीसगढ़ में जैन धर्म की प्रस्तर प्रतिमाओं का निर्माण मुख्यतः शरभपुरीय-पाण्डुवंशीय काल में प्रारंभ हुआ। इसमें रायपुर संग्रहालय में संरक्षित पार्श्वनाथ की प्रतिमा उल्लेखनीय है। इस काल की कुछ प्रतिमाएं जीर्ण-शीर्ण स्थिति में पुरगनिया देव मंदिर मल्हार में भी सुरक्षित है। छत्तीसगढ़ के अधिकांश पाषाण प्रतिमाएं कलचुरि काल की हैं, जिसमें से कुछ का संग्रह रायपुर में बिलासपुर के संग्रहालयों तथा स्थल संग्रहालयों (मल्हार, सिरपुर) में है। इनमें आरंग, सिरपुर, राजिम, मल्हार, रतनपुर, धनपुर, नेतनागर, पुजारीपाली, महेशपुर, पेन्ड्रा, अड़भार आदि स्थलों की प्रतिमाएं उल्लेखनीय हैं। कलचुरियों के समकालीन बस्तर क्षेत्र में राज्य करने वाले नागवंशीय शासकों के काल की जैन प्रतिमाएं कुरुसपाल, गढ़बोदरा, बारसूर आदि स्थलों में उपलब्ध है।[12] इसमें धनपुर से शैलोत्खात (rock-cut) तीर्थंकर प्रतिमाएं मिली हैं। शैलोत्खात शैली का छत्तीसगढ़ में एकमात्र उदाहरण है। हाल ही के वर्षों में दुर्ग जिले में पाटन के निकट कुम्ही ग्राम तथा कोरिया जिले के सोनहत विकास खण्ड में स्थित-केशगंज से भी तीर्थंकर प्रतिमाएं मिली हैं।

धातु प्रतिमाएं

छत्तीसगढ़ के प्रसिद्ध पुरातात्विक स्थल सिरपुर (जिला-महासमुन्द) में सन् 1939 में धातु प्रतिमाओं का एक दफ़ीना प्राप्त हुआ था। कहा जाता है कि इन दफ़ीनों में साठ धातु प्रतिमाएं थीं। ये प्रतिमाएं तत्कालीन मालगुजार श्री श्यामसुंदर अग्रवाल के पास पहुंचा दी गई। श्री अग्रवाल ने कुछ प्रतिमाएं अपने मित्रों को भेंट कर दी और कुछ के विषय में ठीक से ज्ञात नहीं है कि उनका क्या हुआ। वर्तमान में सिरपुर से प्राप्त सर्वश्रेष्ठ तारा की प्रतिमा लास एंजिलेस (अमरीका) के संग्रहालय में संरक्षित है। कुछ प्रतिमाएं नागपुर और रायपुर संग्रहालय के संग्रहों में है, किन्तु ये सभी प्रतिमाएं बौद्ध धर्म से संबंधित हैं।[13] सिरपुर की प्रतिमाएं निर्माण कला और तकनीक की दृष्टि से नालन्दा से साम्य रखती हैं।

सिरपुर से प्राप्त धातु प्रतिमाओं में से दो प्रतिमाएं जैन धर्म से संबंधित हैं। इनमें से एक प्रतिमा युगाधिदेव ऋषभदेव की नवग्रह युक्त प्रतिमा है। यह प्रतिमा पहले मुनि कांतिसागर के संग्रह में थी। इसकी वर्तमान स्थिति ज्ञात नहीं है। सिरपुर से प्राप्त दूसरी प्रतिमा भी ऋषभदेव की है। यह प्रतिमा एल.डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी संग्रहालय, अहमदाबाद में संग्रहित है।[14]

सिरपुर की धातु प्रतिमाओं का निर्माण स्थल सामान्यतः 8-9वीं शताब्दी ई. माना जाता है। इस संबंध में दृष्टव्य है कि सिरपुर का वैभव और अधिकांश कलात्मक गतिविधियाँ पाण्डुवंशीय राजा महाशिवगुप्त बालार्जुन के काल की हैं। अतः सिरपुर की धातु प्रतिमाओं को उसके समकालीन अर्थात् 7वीं शताब्दी ई. का स्वीकार किया जाना अधिक उचित होगा।

स्फटिक की प्रतिमाएं

लगभग एक सौ वर्ष पूर्व स्फटिक की तीन प्रतिमाएं आरंग के किसान को प्राप्त हुई थी। यह प्रतिमाएं वर्तमान में रायपुर के दिगम्बर जैन मंदिर में पूजार्थ रखी गयी है। इन प्रतिमाओं का विस्तृत अध्ययन डॉ. मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित [15] ने किया है। छत्तीसगढ़ में स्फटिक प्रतिमाएं ज्ञात नहीं है, अत. इन प्रतिमाओं को विशेष महत्व का कहा जा सकता है। आरंग से प्राप्त इन प्रतिमाओं में से एक 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और दो 10वें तीर्थंकर शीतलनाथ की है।

डॉ. दीक्षित इनमें से शीतलनाथ (प्रतिमा क्र. 2) को 7-8वीं शताब्दी ई., पार्श्वनाथ (प्रतिमा क्र. 1) को 11-12वीं शताब्दी ई. का तथा शीतलनाथ (प्रतिमा क्र. 3) को सबसे बाद की अथवा 14-15वीं शताब्दी ई.का मानते हैं। उन्होंने इन प्रतिमाओं के तिथि निर्धारण में कठिनाई का उल्लेख किया है जो समुचित ही है। इस संबंध में मुनि कांतिसागर [16] का कथन है कि इन प्रतिमाओं की मुखाकृति और रचना काल सिरपुर से प्राप्त धातु मूर्तियों के समान है, अतः इन्हें सोमवंशीय नरेशों के काल की मानना उचित है।

आरंग से प्राप्त स्फटिक की तीनों प्रतिमाएं एक ही प्रकार की सामग्री से निर्मित है तथा एक साथ प्राप्त हुई है। ऐसी परिस्थिति में इनके निर्माण काल में सात-आठ सौ वर्षों का अन्तराल उचित प्रतीत नहीं होता। प्रतिमाओं को दक्षिण कोसल में कला के उत्कर्ष काल अर्थात् पाण्डुवंशीयों के काल का माना जाना उचित है।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ राज्य में जैन धर्म से संबंधित पुरावशेष विविधता लिए हुए विभिन्न काल-खण्डों में भिन्न-भिन्न सामग्रियों से निर्मित हैं। छत्तीसगढ़ के जैन-शिल्प के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय जैन कला और स्थापत्य में छत्तीसगढ़ का अपना विशिष्ट स्थान है। इन सामग्रियों के व्यवस्थित अभिलेखीकरण, अध्ययन के साथ ही क्षेत्रीय कार्यान्तर्गत सर्वेक्षण और अन्वेषण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए जाने की आवश्यकता है, जिससे छत्तीसगढ़ में जैन धर्म और शिल्प पर समग्र रुप में प्रकाश पड़ सकेगा।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. रायकृष्णदास , भारत की चित्रकला ,पृ. 2
2. मुनि कांतिसागर, खण्डहरों का वैभव, पृ 117

3. राय बहादुर हीरालाल, मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ. 15.
4. एपि. इण्डिका, भाग - 20, पृ. 72.
5. उपरिवत् भाग - 9, पृ. 34 इ.
6. कॉर्पस इन्स्क्रीप्शनम् इण्डिकेरम, भाग - 4, पृ. 512 इ.
8. मुनि कांतिसागर, खण्डहरों का वैभव, पृ. 148.
9. उपरिवत्, पृ. 147.
10. इपि. इण्डिका, भाग - 9.
11. कृष्णदेव का लेख, *मध्यभारतः कलचुरि क्षेत्र आरंग*, जैन स्थापत्य एवं कला, भाग- 2, पृ. 299-300
12. प्रस्तुत ग्रंथ में बिभिन्न स्थलों से प्राप्त प्रतिमाओं के संबंध में लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं। अतः पुनरावृत्ति से बचने की दृष्टि से यहाँ पर प्रतिमाओं का विवरण विस्तार से नहीं दिया जा रहा है।
13. सिरपुर की धातु प्रतिमाओं के लिए देखिए बालचन्द्र जैन, महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, पुरातत्व उपविभाग में संग्रिहित वस्तुओं का सूची पत्र, भाग- 3, धातु प्रतिमाएं, रायपुर 1960 एवं एम.जी.दीक्षित, बुलेटिन ऑफ प्रिंस वेल्स म्यूजियम, अंक - 5.
14. इन प्रतिमाओं के विस्तृत विवरण के लिए देखिए इसी पुस्तक में प्रकाशित चन्द्रशेखर गुप्त का लेख, *'सिरपुर से प्राप्त आदिनाथ की दो कांस्य मूर्तियां'*.
15. मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित, *आरंग में प्राप्त तीन जैन स्फटिक मूर्तियां*, रेवा, अंक - 2, पृ. 22-26, इस लेख को इस पुस्तक में पुर्नमुद्रित किया जा रहा है।
16. मुनि कांतिसागर, खण्डहरों का वैभव, पृ. 38.

दक्षिण कोसल एवं डाहल क्षेत्र की जैन प्रतिमाओं की शैलीगत विशिष्टताएँ

डॉ. रमानाथ मिश्र

इस शोध पत्र में मध्य भारत के जैन प्रतिमाओं की शैली तथा विकास की विशिष्टताओं के संबंध में संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास किया गया है, जिसने डाहल और दक्षिण कोसल [1] के कलचुरि प्रतिमाओं को शैलीगत स्वरुप प्रदान किया है।

यह भी रोचक है कि शैवमत के होने के बावजूद कलचुरियों की श्रद्धा ने कभी भी जैन धर्म के विकास के मार्ग में, अपने आधिपत्य वाले क्षेत्र में बाधा नहीं डाली। कुछ राजकीय अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि कलचुरियों ने जैन मंदिरों का निर्माण कराया था। जिन, बैठे हुए युगल (जिनका अभिज्ञान धरणेन्द्र-पद्मावती, अंबिका-सर्वन्द अथवा जिन के माता-पिता के रुप में शिल्पांकन किया जाता है), तथा जैन शासन देवता एवं उपासकों के शिल्प के बहुसर्जक अवशेष, राजकीय एवं व्यक्तिगत संरक्षण मिलना यह सभी बातें इस तथ्य की द्योतक हैं कि कलचुरियों के शासन काल में जैन धर्म फूलाफला और विकसित हुआ। कुछ प्रतिमाएँ स्वयं की परम्परा से युक्त एक विशिष्ट मूर्ति कला से प्रभावित दिखती हैं। [2]

I

जैन स्मारकों से संबंधित अभिलेखों के प्रमाण मात्रात्मक रुप में इस क्षेत्र में बहुत कम हैं। कलचुरि संवत् 900 (ई.1159) के एक अभिलेख में मथुरा के जसदेव और जसधावल के द्वारा त्रिपुरी में तीर्थंकर की प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख है। यह संक्षिप्त अभिलेख प्रतिमा की आधार-पीठिका पर उत्कीर्ण है और वर्तमान में सागर विश्वविद्यालय के डॉ. हरिसिंह गौर पुरातात्त्विक संग्रहालय में संग्रहित है। [3]

गयाकर्ण (ई. 1123-53) के काल के बोहरीबन्ध जैन प्रतिमा अभिलेख [4] में सर्वधारा के पुत्र महाभोज द्वारा तीर्थंकर शांतिनाथ के मंदिर निमार्ण का उल्लेख है। इस अभिलेख में यह जानकारी भी मिलती है कि मंदिर के सामने सफेद वितान भी निर्मित था। अभिलेखीय साक्ष्य से स्पष्ट है कि यह मंदिर स्वयं में एक रम्य संरचना हुआ करती थी। वितान भी अत्यंत शुभ्र एवं सुन्दर था। इसके निर्माण करने वाले सूत्रधार का नाम श्रेष्ठिन और मूर्ति प्रतिष्ठित करने वाले आचार्य का नाम सुभद्र था। यह आचार्य पवित्र चन्द्राकर के आम्नाय के देशीगण के अंतर्गत अन्वय शाखा से संबंधित थे। [5]

विक्रम संवत् 1216 (ई. 1159) के आल्हाघाट अभिलेख में एक *'शटिशडिका घाट'* और घाट की ओर जाने वाले मार्ग पर अंबिका मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। [6] यह कार्य राणक

चिहुल के द्वारा संपन्न हुआ था जो कौशांबी के शैतिया वंश से संबंधित था। राणक स्वयं कलचुरि नरेश नरसिंह देव (ई. 1153-63) का एक सामंत था। यह कहना कठिन है कि वह मंदिर नेमिनाथ की शासनदेवी अंबिका को समर्पित था अथवा इसी नाम की ब्राह्मण देवी को। लेकिन इस संबंध में सतना जिला स्थित पतियानदाई ने एक जैन मंदिर के अस्तित्व को रोचक संयोग ही कहा जा सकता है। निस्संदेह यह मंदिर एक जैन स्मारक ही है। इसे 12वीं शताब्दी का कहा जा सकता है। शैली की दृष्टि से देखा जावे तो बारादरी की कलाकारी और मुख्य द्वार पर उकेरी गई आकृतियों में डाहल के उस काल की कला की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। जिस काल में कला का पतन आरंभ हो चुका था। यह भी आश्चर्यजनक कहा जा सकता है कि इस मंदिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा लगभग 10वीं शताब्दी ई. की अंबिका की है।[5] यह प्रतिमा अब इलाहाबाद के नगर निगम संग्रहालय में संरक्षित है।

प्रसंगवश यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि आल्हाघाट के अभिलेखों में घाट एवं अंबिका मंदिर के निर्माणकार्य में संलग्न अनेक शिल्पकारों का भी उल्लेख मिलता है। कम से कम पाँच शिल्पकारों के नाम इसमें मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं - सूत्रधार कमलसिंह और उसका दल जिसमें सोमे, कोकास, पाल्हण और दल्हण। यह अभिलेख प्रदर्शित करता है कि अनेक शिल्पकार और कलाकार इस समय उभर रहे थे यद्यपि शिल्प शैली क्षयमान थी।

कलचुरि अभिलेखों से जैन धर्म से संबंधित कला गतिविधियों की इतनी ही जानकारी उपलब्ध हो सकी है। इस क्षेत्र में जैनियों की उपस्थिति यद्यपि बिखरी हुई थी किन्तु बड़ी संख्या में थी। यद्यपि यह प्रतिमाएं स्वतंत्र रुप में हैं लेकिन इनके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सतना जिले के पतियानदाई और जबलपुर जिले के बोहरीबन्ध स्थित शांतिनाथ पूजास्थली के अतिरिक्त बिलहरी और कारीतलाई में जैन मंदिर अस्तित्व में रहे होंगे, कारीतलाई और बिलहरी में वर्तमान में उपलब्ध द्वार-शाखाओं को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है। अब संलग्न स्मारक यहाँ उपलब्ध नहीं है और उनके पुरावशेषों को रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर और महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में संग्रहित कर दिया गया है।[6] इन स्थलों में बिलहरी स्थापत्य कला की दृष्टि से उभरकर आया जब युवराजदेव प्रथम (ई. 915-45) की रानी नोहला ने नोहलेश्वर मठ और सोमनाथ मंदिर का निर्माण यहाँ कराया। इन स्मारकों के अवशेष आज भी बिलहरी के पुनर्निर्मित विष्णु-वराह मंदिर में देखे जा सकते हैं। कारीतलाई मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है जिनमें से एक मंदिर का निर्माण ई. 840-41 में हुआ था।[7] कुछ अन्य मंदिरों का निर्माण लक्ष्मणराज द्वितीय (ई. 945-70) के शासन काल में हुआ था। ये निर्माण उस काल की भवन निर्माण गतिविधियों के अतिरिक्त जैन कला की झलक भी देते हैं क्योंकि इन कलाकृतियों की रेखाकृतियों में उस कला की विशेषता एवं शैली स्पष्ट रुप से दृष्टिगत होती है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि अन्य मंदिरों के निर्माण में जैन प्रतिमा विज्ञान के परम्परागत रुपों में क्यों नहीं हैं। ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे जिसमें मूर्तियां एवं प्रतिमा विज्ञान के पारस्परिक सामंजस्य

की प्रक्रिया परिलक्षित होती है। इस संबंध में आरंग के जैन मंदिर का उदाहरण प्रमुखता से दिया जा सकता है, जिसमें भूमिज शैली के स्थापत्य की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है जो विशेष रूप से शैव मंदिरों में पायी जाती है।[10] ऐसा ही प्रतिमा वैज्ञानिक सामंजस्य का एक उदाहरण जबलपुर के हनुमानताल स्थित जैन प्रतिमा में परिलक्षित होता है। कारीतलाई की एक जैन प्रतिमा जो रायपुर संग्रहालय में है, की व्याख्या भी उसी प्रकार की जा सकती है जैसा कि हनुमानताल की प्रतिमा के शिल्प में प्रमुखता से मिलता है। शैलीगत दृष्टि से यह प्रतिमाएं कारीतलाई और त्रिपुरी-जबलपुर के शिल्प की एक विशिष्ट शैली, जो 10-11वीं शताब्दी के काल की है, को स्वीकृत करते दिखाई देते हैं।

सागर और नरसिंहपुर क्षेत्र में भी अनेक जैन पुरावशेष उपलब्ध हैं। "सागर जिले के बीना-बाराह और रानीताल में नौ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के अवशेष बहुत अच्छी स्थिति में देखे जा सकते हैं, जिनमें आदिनाथ, संभवनाथ, शांतिनाथ आदि तथा अंबिका भी हैं। तेल लगाने के कारण इनमें से कुछ प्रतिमाएं अब खराब हो गई हैं। प्रतिमा वैज्ञानिक दृष्टि से नरसिंहपुर टाउन काउंसिल कार्यालय के आहाते के भीतर स्थित एक स्तंभ अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस स्तंभ पर मूलत सर्वतोभद्रिका की प्रतिमा उकेरी गई थी, और आधारपीठ में शासनदेवी की आकृतियाँ थी, जो सौभाग्य से नष्ट होने से बच गई हैं। इस पर पद्मावती, अंबिका और चक्रेश्वरी की आकृतियाँ हैं तथा चौथी आकृति नष्ट हो चुकी है। नरसिंहपुर के सुभाषपार्क स्थित एक जैन प्रतिमा भी उल्लेखनीय है जो सोहागपुर के ठाकुर के संग्रह में संग्रहित प्रतिमाओं तथा जबलपुर के (कर्सटजी के संग्रह में) हैं तथा बनर्जी द्वारा प्रकाशित शैली की प्रतिमाओं से अधिक साम्य रखते हैं।[12] कला एवं प्रतिमा विज्ञान से युक्त जैन शासनदेवियों और उपासकों की मूर्तियां प्रचुर मात्रा में शहडोल (अंतरा एवं सिंघपुर), जबलपुर[13] (तेवर, कारीतलाइ, बिलहरी, दर्शनीगुर्जी, बोहरीबन्ध), सागर (बीनाबाराह, देवरी, रानीताल), सतना (रामवन संग्रहालय, पतियानदाई) में पाया जाना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह क्षेत्र ही कभी विशाल डाहल मण्डल का निर्माण करता था। इसी प्रकार दक्षिण कोसल क्षेत्र की प्रतिमाएं बिलासपुर एवं रायपुर जिलों के सिरपुर, मल्हार, धनपुर, रतनपुर आदि स्थलों से ज्ञात हुई हैं।[14] इनमें से आरंग और मल्हार के उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की जैन कला एवं प्रतिमा विज्ञान प्रकार एवं शैली की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध है। यह अंतिम पक्ष है जिसपर आगे विवेचना की जा रही है।

II

गुप्त वंश के पश्चात् मध्यभारत क्षेत्र में मूर्ति कला की एक निश्चित शैली परिलक्षित होती है, वह स्पष्ट रूप से इस बात का संकेत देती है कि यह शैली स्वयं उत्तर और दक्षिण के गुप्त-वाकाटक परम्परा की शास्त्रीय कला से उपजी है। यद्यपि मध्य भारत में निश्चित तिथि युक्त

गुप्तोत्तरकालीन प्रतिमाएं अधिकता में उपलब्ध नहीं हैं फिर भी शैलीगत विशेषताओं से युक्त विभिन्न चरणों की कुछ तिथियुक्त प्रतिमाएं एरण, मंदसौर और राजस्थान के विशेष क्षेत्रों में देखी जा सकती हैं। डाहल क्षेत्र में नांदचाँद (जिला पन्ना) और सागर (डॉ. हरिसिंह गौर संग्रहालय सागर में रखी अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा) शिल्प की शैलीगत विकास की श्रृंखला को तत्कालीन शिल्पकला के प्रकार को जानने में सहायता करते हैं, तथा कला के शास्त्रीय एवं मध्यकालीन संधिकाल में अपना स्वरुप निर्धारित कर रहे थे। शास्त्रीय कला से मध्यकालीन कला-रुप के परिवर्तन के अध्ययन हेतु भौगोलिक रुप से मध्यभारत के दो क्षेत्रों, डाहल और दक्षिण कोसल में, इसके संदर्भ उपलब्ध हैं।" कला के संरक्षण की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण कोसल के पाण्डुवंशी और डाहल के कलचुरि शासकों के काल में विविध शैलियों का विकास हुआ। इन दोनों में से एक दक्षिण कोसल की शैली में अधिक शालीनता, कलात्मकता और ऐतिहासिक परम्परा की झलक मिलती है। दक्षिण कोसल के शरभपुरीय ", पाण्डुवंशीय " एवं नलवंशीय " अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र गुप्त-वाकाटक राजनीतिक संघर्ष एवं सत्ता परिवर्तन तथा अन्त में उनके पतन के काल में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। दक्षिण कोसल के विभिन्न राजवंश, जो गुप्त एवं वाकाटकों के पश्चातवर्ती थे, के काल में प्रचलित कला शैली में परिवर्तन हुआ।" यद्यपि इस क्षेत्र में बौद्ध एवं ब्राह्मण संप्रदाय के स्मारकों की बाहुलता थी फिर भी समकालीन एवं शैलीगत साम्य से युक्त कुछ जैन प्रतिमाएं मल्हार से ज्ञात हैं। ये प्रतिमाएं जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पतरिया देव मंदिर परिसर में स्थापित हैं। परवर्तीकाल की कुछ जैन प्रतिमाएं मल्हार के श्री अमरनाथ साव के निवास की दीवारों में जड़ी हैं। इनमें से सातवीं (अथवा संभवतः आठवीं शताब्दी ई.) की पतरिया देव मंदिर की आदिनाथ की मूर्ति और इसी मंदिर के बाहर रखी एक अन्य जैन प्रतिमा महत्वपूर्ण हैं। यह दूसरी आसन प्रतिमा भव्य देहाकृति युक्त है किन्तु यह दोनों ही प्रतिमाएं शालीनता, पवित्रता और संतुलित उभरी हुई सतहों के अतिरिक्त लयात्मक, भावभंगिमा को प्रदर्शित करती हैं। अपूर्ण सी इस मूर्ति में भी संतुलित संवेदनात्मक हृदपुंज बिखरता प्रतीत होता है। इस दृष्टि से भी यह मूर्ति उत्कृष्ट कही जा सकती है कि इसकी ठोस भुजाओं में से भी सौम्य शांत भाव उद्भासित होता है। यह आकृतियां शास्त्रीय शैली की पुनःस्थापना एवं इसे जोड़ने की कड़ी के रुप में हैं। यह प्रतिमाएं स्पष्ट रुप से उस शैली के समृद्ध विकास को परिलक्षित करती हैं, जो कुछ क्षेत्रों में देखी जाती है, जैसे रतनपुर (रायपुर संग्रहालय की कल्याणसुन्दर प्रतिमा), धमतरी (इसी संग्रहालय में संग्रहित), खरौद (शबरी मंदिर का प्रवेशद्वार और लक्ष्मणेश्वर मंदिर की पूर्वकाल की प्रतिमाएं), राजिम (राजिवलोचन और रामचन्द्र मंदिर के शिल्प) एवं मुखलिंगम में। यद्यपि दक्षिण कोसल में कालगत दृष्टि से इन शिल्पों की कला में कुछ गिरावट दिखाई देती है किन्तु यह शैली पूरी तरह विलुप्त नहीं हुई थी। दूसरी ओर उड़ीसा के प्रारंभिक स्मारक (उदाहरणार्थ- मुक्तेश्वर) पूरी तरह से इस कलात्मक परंपरा में ढल चुकी आकृतियों को प्रदर्शित करती है।" ऐसा माना जाता है कि अपर महानदी घाटी की कला

एवं स्थापत्य ने उत्कल क्षेत्र की ओर जब प्रस्थान किया तब उसने वहाँ गहरा प्रभाव छोड़ा। इससे इस क्षेत्र में कुछ परिवर्तन के साथ कलात्मक अवधारणाओं को पुनर्जीवित करने की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। [21]

दक्षिण कोसल की शिल्प परंपरा के संबंध में पांडु और नलवंश के बाद और कलचुरियों के आगमन के पूर्व तक बाणवंश के समय को छोड़कर कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। कलचुरियों के शासनकाल में जिन्होंने त्रिपुरी की मुख्य धारा की शाखा से प्रारंभ किया और जाजल्लदेव प्रथम (ई. 1090-1120) के शासन काल में जब वे स्वतंत्र हुए तब दक्षिण कोसल क्षेत्र में जैन प्रतिमाओं का निर्माण किया गया। ये मूर्तियाँ काले पत्थर (रतनपुर) पर उकेरी गई थीं या फिर धूसर, बलुआ पत्थरों (मल्हार) पर उकेरी गई थीं और ये उसी शैली का अनुकरण करती हैं जो उस क्षेत्र के अन्य शिल्पों में उपलब्ध हैं। इसमें इनकी लम्बी भुजाएं, फूले मुख, विस्तारित वक्ष-स्थल और एकाएक लगभग त्रिकोणाकार में परिवर्तित कटिभाग और गठान के समान नाभि प्रदेश और उसके नीचे संबद्ध पैर, ये सब लक्षण इस काल में दक्षिण कोसल क्षेत्र की मूर्तिशिल्प में पाये जाते हैं जो इसके क्षेत्रीय लक्षण हैं।

यह शैली न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ दक्षिण कोसल में लगभग 10वीं से 14वीं शताब्दी ई. की कला में प्रचलित रही। रतनपुर में (लगभग 12वीं शताब्दी ई.) काले पत्थर से निर्मित चन्द्रप्रभ, ऋषभदेव और अन्य प्रतिमाओं में यही लक्षण दिखाई देते हैं। जिन-प्रकार की आसन प्रतिमाओं ने काले पत्थर में निर्मित रतनपुर, खरौद, छपरी, अमरकंटक और मल्हार की उपासक मूर्तियों को विकसित करने में योगदान दिया। कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दक्षिण कोसल का कलचुरि काल अपनी कलात्मक शैली और विस्तार की दृष्टि से अद्वितीय है। भौगोलिक दृष्टि से यह लगभग सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ और बस्तर क्षेत्र के अतिरिक्त अमरकंटक और मार्कण्ड (महाराष्ट्र) जैसे अन्य क्षेत्रों में भी फैला हुआ है। इस शैली का उद्गम महानदी घाटी में सिमट कर रह गया जबकि उड़ीसा क्षेत्र में जैपुर, रानीपुर-झरियाल, भुवनेश्वर और पुरी में इसने अधिक उत्कृष्ट विस्तार पाया। कुछ नई चतना के बावजूद छत्तीसगढ़ में इसका स्वरूप अपरिवर्तित रहा।

रायपुर जिले के आरंग स्थित भांड-देवल की प्रतिमाएं इस दृष्टि से अपवाद स्वरूप हैं। यह मंदिर ताराकृत भू-योजना में ऊंचे पीठ जो सात प्रकार के थरों से युक्त है, जिसमें गजथर, अश्वथर और नरथर प्रमुख हैं, में निर्मित हैं। इस मंदिर की जंघा में छ ऊर्ध्वतल हैं जिनपर मूर्तियों की दो पट्टियाँ सुसज्जित हैं। मूर्तियों की पट्टियाँ एक दूसरे से विशेष प्रकार की संरचना द्वारा विभाजित की गई हैं, जिसे विद्याधर पट्टिका कहा जाता है। जंघा के भद्र के आले पर जैन शासन देवियाँ तथा अन्य देवी-देवता दिगपाल एवं अप्सराएं आदि अंकित हैं। प्रक्षेप एवं अन्तःप्रक्षेप (सलिलान्तर) एक-दूसर के बाद हैं, में मिथुन मूर्तियाँ अंकित हैं। यह 11वीं शताब्दी और उसके पश्चात् दक्षिण कोसल और डाहल की कलचुरि मंदिरों की अनिवार्य अंग बन गये थे। जंघा की

कुछ आकृतियों में यक्षों और जिन का चित्रण मिलता है। यहाँ कम से कम 21 यक्ष मूर्तियाँ हैं। यद्यपि स्पष्ट संज्ञान के अभाव में इन्हें किसी प्रतिमा लक्षण की परम्परा से संबंधित कर पाना कठिन है। जंघा पर उत्कीर्ण अप्सराएं, मिथुन प्रतिमाएं, शासन देवियाँ, उपासक, दिक्पाल आदि प्रदर्शित किये गये हैं जबकि अन्य कलचुरि मंदिरों में पाये जाने वाले व्याल आकृतियों का यहाँ अभाव है। मंदिर के दक्षिण की ओर मध्य भद्र पर एक ओर एक अकेली व्याल आकृति अपवाद रूप में दिखाई पड़ती है। इस मंदिर की जंघा में अनेक ऐसी आकृतियाँ भी उत्कीर्ण की गई हैं जिन्हें जैन आकृतियाँ नहीं कहा जा सकता। इसके अंतर्गत भैरव (दक्षिण भाग), नटेश (दक्षिणी भाग के मध्य में) और कृष्णलीला (उत्तरी भाग के मध्य में) अंकित है। इन सब के अतिरिक्त मंदिर की भित्तियों पर नर्तकदलों, योद्धाओं, द्वंद युद्ध करने वालों की आकृतियों का अंकन किया जाना विशेष उल्लेखनीय है। दक्षिणी भाग की ऊपरी पट्टिका में एक बांसुरी वादक की आकृति दिखाई देती है, इस आकृति में दो धड़ और एक सिर है, इसके नीचे नगाड़ा वादक का चित्रण है। मंदिर का शिखर भूमिज शैली का है जिसपर भद्र सामान्यत लता से निकलती है। प्रत्येक लता में एक या अधिक जैन आकृतियों की श्रृंखला है।

कुल मिलाकर यह मंदिर इस क्षेत्र का एक अनूठा और महत्वपूर्ण स्मारक है जैसा कि कृष्णदेव[21] ने स्थापित किया है। शैलीगत दृष्टि से देखा जाये तो अलंकरण के लिए उत्कीर्ण की गयी आकृतियों में आंगिक झुकाव प्रदर्शित नहीं होता जो सामान्यत: इस क्षेत्र की कला में प्रमुखता से प्रदर्शित होता है। इसीलिए इस मंदिर के निर्माण कार्य के लिए किसी अन्य क्षेत्र के मंदिरों से प्रेरणा लेने का अनुमान किया जा सकता है। इस हेतु डाहल क्षेत्र की ओर दृष्टि डालना उचित होगा। कृष्णदेव ने इस संभावना को स्वीकार किया है कि सोहागपुर के विराटेश्वर मंदिर में भांड-देवल की कला को प्रभावित किया होगा।

जहाँ तक डाहल क्षेत्र का संबंध है यहाँ की प्रमुख शिल्प शैलियों के लक्षणों और उसके अधिकेन्द्रों तथा विस्तार का निर्धारण करना संभव है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक प्रतिमाएं सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय की अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा से प्रभावित हैं, जिसमें सादगी का संकेत मिलता है। इसके परिकर की आकृति में भारी अलंकरण नहीं है। मानव आकृतियों के मुख अण्डाकार और केश-सज्जा सादी और छोटे मुकुट से युक्त है। बीनाबारहा की जिन प्रतिमा और मढ़ पिपरिया एवं बीनाबारहा की नटेश प्रतिमाओं में यही लक्षण दिखाई देते हैं। ये आकृतियाँ 9वीं शताब्दी की हो सकती हैं। डाहल क्षेत्र की कला परम्परा की दृष्टि से 10वीं शताब्दी परिवर्तन का काल कहा जा सकता है। इस काल में कलचुरि शासकों ने मत्तमयूर संप्रदाय के संतों को आमंत्रित कर अपने आधिपत्य के क्षेत्र में उनके लिए अनेक मठों की स्थापना की। इसके फलस्वरूप प्रतिमाओं की गुणवत्ता और शिल्प की कलात्मकता में एक विकास दिखायी देता है। पूर्व में उल्लिखित बिलहरी और कारीतलाई की जिन प्रतिमाएं इसी शैली की प्रतीत होती हैं। बैजनाथ, मरई, गुर्गी, मोहसाँव, बिलहरी और अर्जुला के अवशेषों की द्वार-

शाखाएं और अन्य कलाकृतियाँ 10वीं से 11वीं शताब्दी के मध्य शिल्प के विकास के विभिन्न चरणों का परिचय देती हैं। ये एक ऐसी शैली से हमें परिचित कराती है जिसमें आकृतियों का आकार कुछ लंबोतर, छड़ चौकोर के स्थान पर त्रिकोणाकार दिखाई देता है, यह पतली कमर और पैरों पर जो कभी-कभी स्तंभाकार है आधारित होता है। सभी स्थानक प्रतिमाओं के शरीर की आकृति में भंग मुद्रा शोभायमान होती हैं। खजुराहो के लक्ष्मणेश्वर मंदिर[24] की आकृतियों में इसी शैली के समकक्ष सामान्तर शैली दिखाई देती है। कारीतलाई (रायपुर संग्रहालय) और बिलहरी (धर्मशाला परिसर) की प्रतिमाएं जैन धर्म की शास्त्रीय आवश्यकताओं से सामंजस्य करती हुई प्रतीत होती हैं। इनमें से पार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ, पद्मप्रभ की मूर्तियाँ (बिलहरी), पार्श्वनाथ की मूर्ति (रायपुर संग्रहालय) विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। सागर, दमोह और नरसिंहपुर जैसे दूरस्थ क्षेत्रों की जिन प्रतिमाओं में इन लक्षणों का प्रभाव दिखाई देता है जो बिलहरी और कारीतलाई की प्रतिमाओ जैसी ही हैं, सिर्फ एक अपवाद को छोड़कर वह है मुख का अण्डाकार होने के स्थान पर चौकोर होना। इस क्षेत्र में इस शैली का अपना एक पूर्ववर्ती इतिहास है लेकिन फिर भी उनका संबंध 10वीं शताब्दी के नरसिंहपुर के जिन एवं यक्षियों की प्रतिमाओं से जोड़ा जा सकता है। नरसिंहपुर के निकट बरहट और नवनीया में स्थित आदिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की प्रतिमाएं हैं, जो इसी काल की प्रतीत होती हैं।

11वीं शताब्दी विशेषकर इसके दूसरे-तीसरे खण्ड का काल डाहल क्षेत्र की मूर्तिकला के विशिष्टता का काल रहा है। प्रतिमाओं के परिकर के अलंकरण में वृद्धि दिखाई देती है। अत्यंत बारीकी से किये गये पत्रलता की कलात्मक नक्काशी से प्रतिमाओं के पृष्ठ भाग में रिक्त स्थानों की पूर्ति से सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है। पत्रलता, मनकों से बनी जंजीर पाद-पीठ में गुथी, अनुचरदेवों की पतली तारों से बने मुकुट, जिन प्रतिमाओं के शीर्ष पर बारीक रेखाओं से उत्कीर्ण छत्र, प्रत्येक मूर्ति की कलात्मकता से देखने वालों को आश्चर्यचकित कर देता है।[25] यद्यपि आसन एवं स्थानक प्रतिमाएं एकरुपता लिए हुए हैं फिर भी इनके परिकर में उस काल की प्रतिमाओं के अलंकरण की दृष्टि से विशिष्टता दिखाई देती है। यहाँ तक स्वयं इन मूर्तियों का प्रश्न है यद्यपि उनकी कठोरता अत्यधिक अलंकरण के कारण कम हुई है फिर भी कलात्मक विकास हुआ प्रतीत होता है। आकार, आभूषणों में कुछ तो नीरसता घटाई ही है, इस प्रकार के कुछ उदाहरण जबलपुर (जैन मंदिर की अरनाथ प्रतिमा), सोहागपुर (ठाकुर से संग्रह मे), लखनादौन (नरसिंहपुर) और बिलहरी में मिलते हैं। इस प्रकार इनमें एक ही शैली में विविधता देखने को मिलती है लेकिन कोणीय शैली सभी में परिलक्षित होती है।

डाहल क्षेत्र की जिन मूर्तियों के परिकर पर कुछ टिप्पणियों के साथ हम किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। 9वीं शताब्दी की प्रारंभिक प्रतिमाओं में विस्तृत अलंकरण नही मिलता, इनमें मालाधारी ऊपरीपट्ट पर और मूर्ति के एक अथवा दोनों पार्श्वों पर परिचारकों का अंकन मिलता है। 10वीं शताब्दी मूर्तियों में परिकर के शिल्प में हाथियों परिचारकों, आसन अथवा स्थानक जिन-

समूह, चंवरधारियों की प्रचुरता दिखाई देती है। जिन प्रतिमा के नीचे सामान्यतः एक चौकी रहती है जिसके मध्य भाग में एक आस्तरक लटकता रहता है। आस्तरक जो कभी-कभी तोरण से अलंकृत है एवं जिन का ज्ञान कराता है। पाद-पीठ में स्तंभ सदृश्य आकृतियों में उपासकों, सिंहों या अन्य प्रतीकों का अंकन किया गया है। मालाधारी विद्याधर एवं परिचारकों से घिरी जिन प्रतिमा कभी-कभी अन्य देवी-देवताओं (ब्राह्मण सम्प्रदाय सहित) के साथ अद्भुत साम्य प्रदर्शित करती हैं। यह समानता इस तथ्य का ओर संकेत देती है कि एक ही कलाकार या उनके शिल्प-संघ द्वारा इन प्रतिमाओं का निर्माण किया गया होगा और आवश्यकतानुसार वे प्रतिमाओं का निर्माण करते रहे होंगे। जहाँ इनको प्रतिमा विज्ञान के बंधन से मुक्त होने का अवसर मिलता तो ये शिल्पी सम्प्रदाय विशेष की शैली से हटकर कुछ नया करने की स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते थे।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

* यह लेख मूलत *"जैन इमेजेज एण्ड देयर प्रिडोमिंट स्टाइल्स डाहल एण्ड साऊथ कोसल रीजन"* शीर्षक से प्राच्य प्रतिमा, अंक 5 (खण्ड-2) पृ 1-13 में प्रकाशित हुआ है जिसका श्रीमती प्रभा टाक ने अनुवाद किया है।

1 इस क्षेत्र के अनेक स्थलों की खोज कनिंघम और उसके सहयोगी बेग्लर एवं गैरिक ने पिछली शताब्दी में किया है। इस क्षेत्र में कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों में भण्डारकर और कजिन्स का नाम उल्लेखनीय है। मात्र आर डी बनर्जी ने त्रिपुरी के हैहयों (जिन्हें चंदी या कलचुरि भी कहा जाता है) पर व्यवस्थित सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। इन कार्यों के अतिरिक्त इस क्षेत्र की विपुल पुरातात्त्विक साक्ष्यों का मूर्ति-शिल्प एवं स्मारकों की दृष्टि से व्यवस्थित अध्ययन नहीं किया गया है। ये स्मारक लोगों का ध्यान आकर्षित करा रहे हैं।

2 रमानाथ मिश्र, *यक्षिणी इमेजेज़ एण्ड मातृका ट्रेडिशन इन सेन्ट्रल इण्डिया*, प्राच्य प्रतिमा, अंक 3, भाग 1, पृ 29-34

3 एम जी दीक्षित, मध्यप्रदेश की पुरातत्व की रूपरेखा, सागर 1954, पृ 70, त्रिपुरी-1952, सागर, 1955, पृ 12 फलक- 7 (ब)

4 व्ही व्ही मिराशी, इन्स्क्रीप्शन्स ऑफ द चेदि-कलचुरि एरा. (का. इ. इ., भाग - 4), उटकमण्ड, 1955, लेख क्रमांक- 59, पृ 310-11 कनिंघम, आ.स.इ.रि , भाग 9, पृ 40, भण्डारकर, प्र.रि.आ.स.वे.इ., वर्ष 1903-04 पृ 54-55)

5 मिराशी के अनुसार इसका समीकरण दिगम्बर सम्प्रदाय से चन्द्रकपाट गच्छ से किया जा सकता है। देखिए का.इ.इ., भाग-4 (1), पृ 310, टिप्पणी-3, इण्डियन एन्टीक्वेटी, 21, पृ. 73, इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि दानदाता के पिता सर्वभद्र, गोल्लपर्व अन्वय की शाखा से थे जिसके अनेक अनुयायी अभी भी मध्यप्रदेश में हैं।

6 मिराशी, पूर्व उद्धृत, पृ. 323-24

7. अम्बिका की इस प्रतिमा के लिए देखिए, एस. के. सरस्वती, **ज.इ.सो.ओ.आ.**, भाग - 8, पृ. 148, यू.पी.शाह, **स्टडीज इन जैन आर्ट**, वाराणसी, 1955, पृ. 18, **जर्नल ऑफ यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे** सितम्बर .
8. बालचन्द्र जैन, *स्कल्पचर्स फ्राम कारीतलाई इन रायपुर म्यूजियम*, **जर्नल ऑफ इण्डियन म्यूजियम**, पृ. 19-20, एवं **प्राच्य प्रतिभा**, भाग - 3 (1), 1975, पृ-89 विन्ध्यप्रदेश और छत्तीसगढ में अपने क्षेत्रीय कार्य के दौरान अधिकांश स्थलों में जैन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं।
9. कारीलतलाई के यह मंदिर संभवतः हिन्दू त्रिदेव को समर्पित किया गया था। कलचुरि सं. 593 (840-41 ई.) के कारीतलाई शिलालेख का प्रारंभ *ॐ द्रुहिणोपेन्द्रेभ्यः* से होता है। देखिए मिराशी, **पूर्व उद्धृत**, पृ. 181.
10. भूमिज शैली के मंदिर के लिए, देखिए कृष्णदेव, *'भूमिज टेम्पल'*, **स्टडीज इन इण्डियन टेम्पल आर्किटेक्चर**, सम्पादक, प्रमोदचन्द्र, 1975, पृ. 90-113.
11. मुनि कांतिसागर **खण्डहरों का वैभव**, पृ. 199-200.
12. आर.डी बनर्जी, **द हैहयाज ऑफ त्रिपुरी एण्ड देयर मानुमेन्ट्स** (मे.आ.स.इ.क्र. 23), पृ. 100, फलक-41 बी. पृ. 102 फलक-48 बी.
13. के.डी. बाजपेयी, **बुलेटिन ऑफ एशियन्ट इण्डियन हिस्ट्री, कल्चर एण्ड आर्कियोलॉजी**, सागर, 1967, पृ. 74.
14. **रायपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर**, पृ. 65-66, **बिलासपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर**, पृ. 61.
15. प्रमोद चन्द्र, **स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम**, 1970, पृ. 33 इ.
16. एम. जी दीक्षित, **पूर्व उद्धृत**, पृ. 58-61.
17. व्ही.व्ही मिराशी, *द पाण्डवाज़ डाइनेस्टी ऑफ मेकल*, **इण्डिका**, (इण्डियन हिस्टॉरिकल इन्स्टीट्यूट, सेन्ट जेवियर कालेज, बम्बई का रजत जयंती अंक), पृ. 268-73.
18. एम.जी दीक्षित, **पूर्व उद्धृत**, (1954), पृ. 60-61, मिराशी, **एपि. इण्डिका**, 26, पृ. 54.
19. दक्षिण कोसल की इष्टिका निर्मित मंदिरों का काल 7-8वीं शताब्दी ई. माना जा सकता है। गुप्त - वाकाटक कला का रुपांतरित स्वरुप इस क्षेत्र में 'पारम्परिक-काल' के स्मारकों में परिलक्षित होता है, जिसमें हाल में ही ज्ञात 'ताला' उल्लेखनीय है। इस खोज का श्रेय रायपुर के डॉ विष्णुसिंह ठाकुर तथा केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डान स्टेडनर को जाता है।
20. दक्षिण कोसल की इस परम्परा को उड़ीसा तक पहुँचाने वालों में सोमवंशीय प्रमुख हैं। ब्रह्मेश्वर अभिलेख से ज्ञात होता है कि सोमवंशीय जन्मेजय ने ओड्र की विजय की थी तथा उसके उत्तराधिकारी ने कोसल, उत्कल, कंगोद तथा उस समय कलिंग के नाम से अभिज्ञात पृथक सांस्कृतिक-भाषायी के कुछ भाग की विजय की थी। के.सी. पाणिग्रही, **आर्कियोलॉजिकल रिमेन्स ऑफ भुवनेश्वर** (ओरियन्ट लागमेन, 1961) पृ. 251.
21. **उपरिवत** पृ. 251, सोमवंशीयों के काल में उड़ीसा मूर्ति शिल्प के विशिष्ट लक्षणों के लिए देखिए पाणिग्रही, **उपरिवत**, पृ. 251। उनका (पृ 158) कथन है कि अपर महानदी घाटी में पूर्व बौद्ध रियासत में स्थित तीन मंदिरों में भी इसी प्रकार का प्रभाव (मिश्रित) दिखाई पड़ता है।

22. मिराशी (का. इ.इ., भाग - 4, भूमिका, पृ. 115-17), 9वीं शताब्दी में पाली के मंदिर का निर्माण बाण शासक विक्रमादित्य द्वारा किये जाने का उल्लेख करते हैं। शैलीगत दृष्टि से इस मंदिर को (प्रवेश द्वार को छोड़कर) 12वीं शताब्दी में पुनर्निर्मित माना जाता है। देखिए, कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ नार्थ इण्डिया, पृ. 53.

23. कृष्णदेव, भूमिज टेम्पल (1975) पृ. 110.

24. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ नार्थ इण्डिया, पृ. 62. वे लक्ष्मण मंदिर को 950 ई. का मानते हैं।

25. के. डी. बाजपेयी ने मध्यभारत की ई. 1300-1800 की जैन कला की चर्चा करने हेतु इन प्रतिमाओं पर विचार किया है। यद्यपि उन्होनें संकेत दिया है कि यहाँ जैन कला 11वीं से 13वीं शताब्दी ई. में विकसित हुई। उनके विचारों के लिए देखिए, जैन आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, भाग - 2, (सम्पादक- ए.घोष) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1975, पृ 353

आरंग में प्राप्त तीन जैन स्फटिक मूर्तियाँ

डॉ. मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित

प्राचीन इतिहास

रायपुर जिले के अन्तर्गत आरंग नामक एक बहुत प्राचीन कस्बा है। महानदी के कछार में बसा हुआ यह ग्राम छत्तीसगढ़ के इतिहास में गौरवशाली स्थान पाता है, इस ग्राम में प्राप्त कई प्राचीन ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों के द्वारा दक्षिण कोशल के इतिहास की कुछ टूटी श्रृंखलाएं जोड़ी जा सकती हैं। इन उत्कीर्ण लेखों में सबसे प्राचीन लेख तीसरी-चौथी शताब्दी का है, जिसमें आरंग के परिसर में अवस्थित भृन्गार नामक पर्वत का उल्लेख आया है।[1] उसके पश्चात् एक ताम्रपत्र भी यहाँ पाया गया है, जिसमें "राजर्षितुल्यकुल" में समुत्पन्न राजा भीमदेव द्वितीय द्वारा किये गये दान का उल्लेख मिलता है।[2] इस राजवंश का अस्तित्व बताने वाला यह एकमात्र ताम्रपत्र काल की दृष्टि से ईसा की सातवीं शताब्दी (पूर्वार्ध) का माना जाता है। शरभपुर नामक किसी अज्ञात राजधानी से राज्य करने वाले राजवंश के दो ताम्रपत्र आरंग मे पाये गये थे, जिसमें महाजयराज[3] तथा उसके भतीजे महासुदेवराज[4] द्वारा आरंग के समीपस्थ प्रदेश में राज्य करने का उल्लेख मिलता है। शरभपुर राजवंश के पश्चात् दक्षिण कोशल में पाण्डव-वंशियों का स्वामित्व हो गया था, जिनकी राजधानी श्रीपुर में थी। इस पांडव-वंशियों का एक लेख आरंग में मिल चुका है।[5]

प्राचीन स्मारक

इतनी इतिहासोपयोगी सामग्री मिल जाने पर आरंग में कतिपय प्राचीन स्मारकावेषों का प्राप्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यहां के महामाया मंदिर में कतिपय जैन मूर्तियां दीवाल में लगी हुई हैं। जिससे पता चलता है कि ईसा की 9-10 वीं सदी में यह स्थान जैन धर्मियों का एक बड़ा महत्वपूर्ण केन्द्र था। इसी ग्राम में भांड नामक दिगंबर जैनियों का एक प्राचीन मंदिर भी है, जो उनके स्थापत्य तथा शिल्पकाल की दृष्टि से 10-11 वीं शताब्दी में रखा जाता है। इस मंदिर के अन्तर्गत, लगभग छः फीट से ऊंची तीन खड़ी प्रतिमाएं एक ही पीठ पर उत्कीर्ण है जो एक किस्म के हरे-रंग के (*Chlorite Schist*) पत्थर से बनी हुई हैं। इस मंदिर का सभामण्डप तथा शिखर का पूर्ववर्ती हिस्सा टूट-फूट गया है, किन्तु पार्श्वभाग जो बहुत कुछ बच गया है, उससे ज्ञात होता है, कि नागर-शिल्प का यह सुन्दर नमूना होगा। मंदिर की बाहरी दीवाल में जैनियों की बहुत कुछ मूर्तियां अभी तक बच गई हैं। जिनमें से कुछ अश्लील भी हैं। संभवतः इन्हीं के कारण यह मंदिर में भांड-मंदिर के नाम से पहचाना जाता है। वर्तमान में यह मंदिर भारत सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित स्मारक घोषित किया गया है।

प्रायः आरंग में जमीन खोदते समय कभी-कभी सिक्के तथा मूर्तियां मिल जाती हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व बंगीचा नामक स्थान पर भूमि के अंतर्गत गड़ी हुई एक प्राचीन वापी तथा बटवृक्ष के तने में छिपे हुए कुछ बड़े आकार के शिवलिंग भी प्राप्त हुए थे, जो सिरपुर में उत्खनन द्वारा प्राप्त सातवीं सदी के पांडव-वंशियों से संबंधित शिवलिंगों से साम्य रखते हैं। वहीं एक ताम्र-मूर्ति भी मिली थी, जिसके आसन पर सातवीं सदी के अक्षरों में "बहुगुण" नाम खुदा हुआ था। यह नाम संभवतः मूर्ति बनाने वाले कारीगर का ही होगा, जैसा हमें श्रीपुर में प्राप्त बौद्ध धातु-मूर्तियों पर मिलता है। श्रीपुर की मूर्तियों पर द्रोणादित्य, कुमारपाल आदि स्वर्णकारों का नाम अंकित

स्फटिक की जैन प्रतिमाएं

आरंग में प्राप्त अन्य अवशेषों के साथ स्फटिक के पारदर्शक पत्थर की तीन मूर्तियां भी मिली हैं, जिनका परिचय इस लेख में दिया गया है। छत्तीसगढ़ की प्राचीन कला के क्षेत्र में ये चीजें सर्वथा अनूठी हैं और साथ-साथ कला की प्रगति का अच्छी तरह से परिचय कराती हैं। न केवल सौन्दर्य की दृष्टि से, किन्तु शिल्पकारी की दृष्टि से भी ये मूर्तियां कला का परिणत नमूनों के रुप में अद्वितीय हैं।

ये मूर्तियां आरंग के समीप एक खेत में एक किसान को प्राप्त हुई थीं, और उन्हे गंगाधर गंधर्व ने सम्वत् 1954 में रायपुर के दिगम्बर जैन मंदिर में स्थापित किया। इनको देखने का सुअवसर मुझे गत वर्ष मिला, जब कि मैं उत्खनन कार्य के कारण सिरपुर जा रहा था। उत्खनन कार्य में व्यस्त रहते हुए भी मैंने इन सुन्दर मूर्तियों के छायाचित्र खींचे थे, क्योंकि सारे भारत में स्फटिक पत्थर की मूर्तियां बहुत कम मिलती हैं, विशेषतः प्राचीन काल की। पूजा में रहने वाली मूर्तियां पूजा के स्थान से बाहर निकाल कर तथा उनका अध्ययन करने के लिए रायपुर के दिगम्बर जैन मंदिर के व्यवस्थापकों ने जो अनुग्रह मुझे बताया उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इन मूर्तियों की संख्या तीन है। बताया जाता है कि ये सभी मूर्तियां अष्टधातु से बनी हुई एक पीठ पर पायी गयी थी, पर अब उन्हें सुवर्णासन पर बैठाया गया है। ये तीनों मूर्तियां जिन प्रतिमाएं हैं। इनमें सबसे बड़ी मूर्ति, जिसका सप्रमाण छायाचित्र क्रमांक 1 के रुप में बतलाया गया है, साधारणतः 7 सेंटीमीटर ऊंची हैं। आसन पर 5.5 सेंटीमीटर चौड़ी तथा गहराई में 4.5 सेंटीमीटर हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 8 x 6 x5 से.मी. या इससे भी बड़े स्फटिक शिला से यह तराश कर बनवायी गयी थी। इसके लिए चुना हुआ स्फटिक अत्यंत पारदर्शक, तथा निर्दोष है और बहुत सालों तक भूमि के अन्तर्गत होते हुए भी उसमें किसी तरह की खराबी नहीं आई है।

मूर्ति पद्मासन में बैठी हुई ध्यान मुद्रा में है। उसका मुख सामान्यतः गोलाकार है, नयन आयताकार चौकोनाकृति है, और कर्ण कंधों पर टिके हुए हैं, जैसा कि "महापुरुषों के लक्षणों" में

बतलाया जा जाता है। मूर्ति के सीने पर कौस्तुभ-मणि के समान, एक चौकोनाकृति (Dimond Shaped) लांछन उद्भव के रूप में उत्कीर्ण है, जिसकी पहचान अस्पष्ट रूप से स्वस्तिक के समान दिखती है। मूर्ति के पार्श्व भाग में सिर के ऊपर सप्त फण युक्त सर्प छत्र के रूप में दिखाई देता है। मस्तक के केश प्राय· घुंघराले बताये गये हैं। इस मूर्ति में खड़ी तथा आड़ी लकीरों से दर्शित किये गये हैं, उसका कारण मूर्ति बनाने में स्फटिक जैसा कठिन पत्थर प्रयुक्त किया गया है, जिससे सूक्ष्म रेखाएँ बनाने में बड़ी कठिनाई होती है।

यह मूर्ति 23 वें तीर्थंकर जिन पार्श्वनाथ की है। उसी के साथ जो अन्य दो प्रतिमाएं प्राप्त हैं, आकार में पहिले की अपेक्षा छोटी हैं। चित्र क्रमांक 2 में बताई गयी मूर्ति के 5.5 संटीमीटर ऊंची, 4.5 संटीमीटर चौड़ी और गहराई में 4 संटीमीटर है। क्रमांक 3 की मूर्ति 3.5 x 2.5 x 3 संटीमीटर नाप की है। यह दोनों मूर्तियां क्रमांक 1 के समान पद्मासनस्थ और ध्यान मुद्रा में हैं। दोनों के मस्तक पर घुंघराले बाल हैं। छाती पर श्रीवत्स होने के कारण ये मूर्तियां 10 वें तीर्थंकर शीतलनाथ की जान पड़ती हैं। फिर भी यह कहना आवश्यक है कि यह तर्क केवल उपरोक्त लांछन द्वारा बताया जाता है, जो बहुत ही अस्पष्ट है। मेरी भावना यह है कि प्रथमत इन दोनों मूर्तियों के लांछन जो हमेशा आसन पर उसके खुदे हुए मिलते हैं, प्रतिमाओं के साथ जो अष्टधातु का पीठ मिला था, उसके ऊपर खुदे होंगे, जो आज अप्राप्य हैं।

मूर्तियों का निर्माण काल

इन मूर्तियों के निर्माण काल के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना मैं उपयुक्त नहीं समझता। क्योंकि स्फटिक जैसे माध्यम से बनी हुई कलाकृतियां बहुत कम मिलती हैं, जिसे तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करना भी कठिन है। दूसरी बात यह है कि इन मूर्तियों के खनन में बहुत सावधानी से काम करते हुए, कलाकार का ध्यान मूर्ति की सुरक्षा की ओर अधिक रहता है, जिससे मूर्ति को क्षति न पहुँचे, इसी कारण से मूर्ति के अंकन में सूक्ष्म शिल्पकारी की सुविधाएं कम होती हैं। माध्यम का प्रभाव इसी तरह से अवयवों की गोलाई तथा अन्य सूक्ष्म काम पर पड़ता है। कभी-कभी पत्थरों में दूषित भाग होने से समय-समय पर अवयवों के अंकन कुछ परिवर्तन करना भी ज़रूरी हो जाता है। इसी विचार से अन्य पत्थर की विशाल मूर्तियां, धातु की मूर्तियां, आदि, के बनाने में जो शिल्पशास्त्रीय सिद्धांत बन चुके हैं, वह कीमती पत्थरों के छोटे आकार के नमूने, इत्यादि में अपेक्षा करना क्षम्य है। माध्यम का कला में असर जरूर दिखाई देता है और इन मूर्तियों का मूल्यांकन अलग हिसाब से ही करना वांछनीय होता है।

आरंग की मूर्तियों के विषय में इतना स्पष्ट है, इनके निर्माण में कलाकारों ने जितना परिश्रम अत्यावश्यक था, उतना जरूर पहुँचाया है। जो विशेष रूप से पार्श्वनाथ की मूर्ति में दिखाई पड़ता है। अवयवों की प्रमाणबद्धता, बैठने का ढंग तथा बारीकी काम में उनका कौशल्य और कला उच्चकोटि में सहज गिनी जा सकती है। मूर्ति के शीर्ष पर सर्प होने के कारण केश विन्यास खोदते

समय उन्हें केवल सरल रेखा के रूप में बताया गया है, क्योंकि उन्हें वर्तुलाकार बनाने में कलाकार अशक्तिक हैं। यह संकोच दूसरी दोनों मूर्तियों में नहीं दिखाई पड़ता, जहाँ आवश्यक प्राकृतिक ढंग से उत्कीर्ण करने तथा अपनी छेनी चलाने में कई कठिनाइयां, कलाकार के सामने उपस्थित नहीं थी।

मूर्तियों का अभ्यास करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि ये मूर्तियां भिन्न-भिन्न काल में बनाई गयीं हैं। संभवतः क्रमांक 2 की मूर्ति जो सब से प्राचीन जान पड़ती है। अनुमानतः ईसा की 7-8 वीं शताब्दी में बनी होगी। पार्श्वनाथ की मूर्ति 11-12 वीं सदी में निर्माण की गई होगी, और क्रमांक 3 की मूर्ति आधुनिक जैसी ई. 14-15 वीं सदी या पश्चात्-काल में की संभवनीय है।

भारत में मूर्तियों का प्रचार

ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि स्फटिक रत्न से बनी हुई मूर्तियों के उदाहरण बहुत ही कम पाये जाते हैं, किन्तु उससे यह अनुमान लगाना उचित नहीं होगा कि इन मूर्तियों का प्रचार बहुत कम मात्रा में होता था।

आरंग की उक्त मूर्तियों के अतिरिक्त मुनि कान्तिसागर जी अपने "खण्डहरों का वैभव" नामक ग्रन्थ में खंभात, नासिक, श्रवण बेलगोला, कलकत्ता, बीकानेर, आदि स्थानों में संग्रहित रत्न मूर्तियों का उल्लेख करते हैं।[6] आप खंभात के स्तंभण के पार्श्वनाथ की मूर्ति को सब से प्राचीन मानते हैं। उसका रत्न आजतक पहचाना नहीं जा सका। इस मूर्ति के एक छायाचित्र में, जो मुझे मेरे मित्र डा. उमाकान्त ने भेजा था, स्पष्ट रूप से यह मूर्ति पॉलिश किये गये काले पत्थर से बनी हुई जान पड़ती है। नासिक की मूर्ति स्फटिक पत्थर की है, जिसका निर्माण उस पर के लेख द्वारा विक्रम-संवत् 1697 का है।[7] बनारस में घन्नूबाबू जैन जौहरी के चैत्यालय में हीरे की एक जिन मूर्ति होने का पता चलता है।[8] मुर्शिदाबाद में राय लक्ष्मीपतिसिंह बहादुर द्वारा निर्मित देवालय में पिटकबुझावा नामक स्फटिक से बनी हुई मूर्ति स्थापित की गई है।

इन जैन मूर्तियों के अतिरिक्त रत्नों के कतिपय हिन्दु मूर्तियों के भी उल्लेख मिलते हैं त्रावणकोर महाराजा के संग्रह में माणिक्य रत्न से बनी गणेश जी की मूर्ति, तथा नीलरत्न के विष्णु मूर्ति होने का भी श्री. खाबंटे जी ने "रत्न परीक्षा" नामक ग्रंथ में किया है।[10] इसी प्रकार नागपुर के भोसलों के संग्रह में हरे रंग के पाँच रत्न का बना हुआ एक रामपंचायतन था,[11] किन्तु विशिष्ट सूत्रों से पता चलता है, वह अभी कलकत्ता में किसी जौहरी के पास है। पूना में प्रस्तुत लेखक ने देवरुखकर नामक सराफ के पास जामुनिया (Amethyst) पत्थर से बनी हुई एक रत्न मूर्ति देखी थी, जिसमें एक मानवाकृति उत्कीर्ण है। अन्य मूर्तियां भी पुरातन देवस्थानों में और जौहरियों के संग्रहों में खोज करने से उपलब्ध हो सकती हैं। जिनका विवरण एक अध्ययन की वस्तु हो सकती है।

वर्तमान रत्नमूर्तियों के अतिरिक्त, रत्नों से बने हुए कतिपय पदार्थ उत्खनन इत्यादि द्वारा

भी रत्नों की प्राचीनता तथा उपयोग के विषय में कई बातें नजर आती हैं और भारत के कला कौशल की अखंड परंपरा की झलक हमें प्राप्त होती है, साथ ही साथ प्राचीन समृद्धि सांपत्तिक वैभव का भी दर्शन होता है। भारतवासियों ने गुप्तोत्तर काल में तो रत्नों का एक शास्त्र ही बनवाया, जिसका ज्ञान हमें रत्नशास्त्र के कई ग्रंथों द्वारा होता है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

* रेवा, अंक 2, फाल्गुन संवत् 2013, (1956 ईस्वी) से साभार पुनर्मुद्रित.

1. आरंग शिलालेख, हीरालाल, उत्कीर्ण लेखों की सूची, क्र. 183 (ज. बा. हि. रि. सो., 4 पृ. 46-47)
2. भीमसेन द्वितीय का आरंग ताम्रपत्र, भण्डारकर सूची, क्र. 1329, हीरालाल सूची, क्र. 170, एपि. इंडिका, भाग 9, पृ. 342
3. महाजयराज का आरंग ताम्रपत्र, राज्यवर्ष 5, भण्डारकर सूची, क्र. 1878, हीरालाल सूची, क्र. 175, का. इ. इ. भाग 3, पृ. 191
4. महासुदेवराज का आरंग ताम्रपत्र, राज्यवर्ष-8, हीरालाल सूची, क्र. 177 अ, पाण्डेय, एपि. इंडिका, भाग - 23 पृ. 19
5. आरंग शिलालेख, भण्डारकर सूची, क्र. 2650, हीरालाल सूची, क्र. 14, ज.रा.ए.सो., 1905
6. मुनि कांतिसागर, खण्डहरों का वैभव, पृ. 39,
7. यह लेख इस प्रकार का है, "संवत् 1697 फागुण सुदी 3 वटपद्र वासि सा. खिमजी सुपुत्र माणिक जी केन श्री. अंतरिक्ष पार्श्वनाथ बि. क. प्र. तपा. विजयदेव सूरिभि।"
8. डा. मोतीचन्द्र के मतानुसार उत्तरी भारत में प्राप्त हीरक मूर्तियाँ प्रायः स्फटिक पत्थर की बनी रहती हैं, भगवानलाल इन्द्र जी स्मृति ग्रंथ, गुजरात रिसर्च सोसायटी का जर्नल, भाग - 1, पृ. 39
9. सौरिन्द्र मोहन टैगोर, मणिमाला, भाग - 2, पृ. 919
10. खांबेट, रत्नपरीक्षा भाग -1, पृ. 210 तथा 217
11. उपरिवत, पृ. 246.

रायपुर संग्रहालय की जैन प्रतिमाएं

बालचन्द्र जैन

रायपुर स्थित महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय में जैन प्रतिमाओं का एक समृद्ध संग्रह है जिसमें चालीस पाषाण-निर्मित तीर्थंकरों, सेवक देवी-देवताओं, चौमुख, सहस्त्रकूट आदि प्रतिमाएं हैं। ये प्रतिमाएं कलचुरि शासकों के काल की हैं। इनमें मात्र एक ही प्रतिमा है जो दक्षिण कोसल के सोमवंशीय शासनकाल की है। इन उन्तालीस कलचुरिकालीन प्रतिमाओं में से तैंतीस प्रतिमाएं डाहल या चेदि के कलचुरि शासकों के काल की कला का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनकी राजधानी जबलपुर के समीप त्रिपुरी (आधुनिक तेवर) में थीं। शेष छः प्रतिमाएँ उन स्थानों से प्राप्त हुई हैं जो कलचुरियों के उत्तराधिकारीयों के शासनाधीन थे और जिनकी राजधानी बिलासपुर जिले के रत्नपुर (आधुनिक रतनपुर) में थी। सोमवंशीय शासनकाल की एकमात्र प्रतिमा दक्षिण कोसल की प्राचीन राजधानी सिरपुर (प्राचीन श्रीपुर) से प्राप्त हुई मानी जाती है। इस प्रतिमा का समय लगभग 800 ई. निर्धारित किया जाता है। समस्त डाहल प्रतिमाएँ जबलपुर जिले के कारीतलाई स्थान से प्राप्त हुई हैं, जिनका समय 10-11वीं शताब्दी है। छत्तीसगढ से प्राप्त प्रतिमाओं में से चार रतनपुर से, और दो खण्डित प्रतिमाएँ रायपुर जिले के आरंग से प्राप्त की गई है। ये सभी प्रतिमाएँ 12वीं शताब्दी की हैं।

सिरपुर से प्राप्त प्रतिमाएँ

पार्श्वनाथ- पार्श्वनाथ की इस प्रतिमा (0003, ऊँचाई 1.08 मी.) में तीर्थंकर को पद्मासन-मुद्रा में दिखाया गया है। तीर्थंकर के सिर पर सप्त-फणी नाग-छत्र है। नाग की समानांतर कुछ कुंडलियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे वे तीर्थंकर के पीछे तकिये का कार्य दे रहीं हो और किनारों पर उत्कीर्ण मकर की आकृतियाँ तीर्थंकर के आसन की पीठ का रचना करती दिखाई दे रही है। तीर्थंकर का मुख, हाथ और घुटने खण्डित हैं। तीर्थंकर के वक्ष पर श्री-वत्स चिन्ह और हथेलियों पर चक्र अंकित है। उनके घुंघराले बाल उष्णीष में आबद्ध हैं। इस प्रतिमा का पादपीठ अत्यंत खण्डित है। (चित्र क्र.- 4)

कारीतलाई से प्राप्त प्रतिमाएँ

कलचुरियों के काल में कारीतलाई जैनों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ पर बड़ी संख्या में जैन प्रतिमाएँ प्राप्त की गई थीं जिनमें से तैंतीस प्रतिमाएँ इस संग्रहालय द्वारा प्राप्त की गयीं।

ऋषभनाथ की प्रतिमाएँ - संग्रहालय में ऋषभनाथ की पाषाण निर्मित छह प्रतिमाएँ हैं। इनमें से एक प्रतिमा (2537, ऊँचाई 1.35 मी.) में ऋषभनाथ पद्मासन मुद्रा में एक अलंकृत उच्च

पादपीठ पर बैठे हैं। तीर्थंकर का सिर, दायाँ हाथ और बायाँ घुटना खण्डित है। वक्ष पर श्री-वत्स का चिन्ह और सिर के पीछे प्रभामण्डल अंकित है। प्रभामण्डल के ऊपर एक तिहरा छत्र है जिसके दोनों पार्श्वों में गज पर आरुढ़ एक-एक आकृति प्रदर्शित है। छत्र के ऊपर एक दुंदुभिवादक है। गजों के नीचे माला-धारी विद्याधर दंपति अंकित हैं। विद्याधरों के नीचे सौधर्म एवं ईशान स्वर्गों के इंद्र चमर धारण किये खड़े हैं। पादपीठ पर वृषभ और उसके नीचे धर्मचक्र है जिसके पार्श्वों मे एक-एक सिंह अंकित है। सिंहासन के दायीं ओर के कोने पर गोमुख यक्ष तथा बायीं ओर के कोने पर चक्रेश्वरी यक्षी ललितासन-मुद्रा में बैठी है। ऋषभनाथ की दूसरी प्रतिमा (2576, ऊँचाई 1.32 मी.) पूर्वोक्त प्रतिमा की ही भांति है। इस प्रतिमा में तीर्थंकर के दोनों हाथ ओर घुटने खण्डित हैं। यक्षी चक्रेश्वरी को गरुड़ पर आरुढ़ दिखाया गया है। ऋषभनाथ की शेष चारों प्रतिमाओं (0033, 2525, 2594) में तीर्थंकर को पद्मासन-मुद्रा में दिखाया गया है। एक प्रतिमा (0033, ऊँचाई 74 से. मी.) के पादपीठ पर बायें सिरे पर चक्रेश्वरी के स्थान पर अंबिका अंकित है, जबकि दूसरी प्रतिमा (2548) के सिंहासन में सिंहों के साथ दो हाथी भी अंकित हैं।

शांतिनाथ की प्रतिमाएँ - शांतिनाथ का एक प्रतिमा (2538) में उन्हें कायोत्सर्ग-मुद्रा में दर्शाया गया है। पादपीठ पर उनका लांछन हिरण अंकित है। पार्श्ववर्ती सिंहों के अतिरिक्त यक्ष गरुड़ और यक्षी महामानसी भी अंकित हैं।

पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ - संग्रहालय में संरक्षित पार्श्वनाथ की पाँचों प्रतिमाएँ कारीतलाई से प्राप्त हैं। इनमें दो प्रतिमाएँ (0035, ऊँचाई 1.04 मी. तथा 2577, ऊँचाई 1.37 मी.) वस्तुतः पार्श्वनाथ के चतुर्विंशति-पट्ट हैं। पहली प्रतिमा में पार्श्वनाथ को सप्त-फणी नाग-छत्र के नीचे पद्मासन-मुद्रा में दर्शाया गया है। तीर्थंकर की दायीं ओर नौ और बायीं ओर आठ लघु तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। शेष छः तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ छत्र के ऊपरी किनारों पर एक पंक्ति में अंकित रही होंगी क्योंकि यह भाग खण्डित है। पादपीठ पर धरणेन्द्र और पद्मावती को बैठे हुए अंकित दिखाया गया है जिनके ऊपर नाग-फणों के छत्र हैं। पार्श्वनाथ की शेष दो प्रतिमाएँ (2553 तथा 2551) खण्डित हैं।

महावीर की प्रतिमाएँ - इस संग्रहालय की सर्वोत्तम प्रतिमाओं में से एक प्रतिमा (1136, ऊँचाई 1.01 मी.) महावीर की है जो श्वेत बलुएपत्थर से निर्मित है। महावीर एक उच्चासन पर ध्यान-मुद्रा में उत्थित-पद्मासनस्थ हैं। उनके घुंघराले बाल उष्णीष में आबद्ध हैं। उनके वक्षस्थल पर श्री-वत्स चिन्ह है। प्रतिमा का ऊपरी और दायाँ भाग खण्डित है जिसपर प्रभामण्डल और प्रतिहार्य की अन्य आकृतियाँ अंकित रही होंगी क्योंकि तीर्थंकर के ठीक दायीं ओर अंकित कुछ तीर्थंकर-आकृतियाँ दिखाई देती हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह भी एक चतुर्विंशति-पट्ट था। पादपीठ पर चक्र और तीर्थंकर का लांछन सिंह अंकित है। दो सिंहों के बीच में सिंहासन प्रदर्शित है। चक्र

ओर लांछन के ठीक नीचे एक लेटी हुई महिला की आकृति है जो संभवतः इस प्रतिमा की दानदात्री की आकृति होगी। पादपीठ के किनारों पर यक्ष मातंग और यक्षी सिद्धायिका अंकित हैं जिनके नीचे दोनों ओर एक-एक उपासक हैं।

अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ - इस संग्रहालय में तीर्थंकरों की चार प्रतिमाएँ और हैं जिन्हें पहचाना नहीं जा सका है। इनमें से एक लाल बलुए पत्थर की प्रतिमा (2533, ऊँचाई 1.37 मी.) जिसमें तीर्थंकर को कायोत्सर्ग-मुद्रा में दर्शाया गया है, इस संग्रहालय की एक श्रेष्ठ प्रतिमा है। इसके लिए 10वीं शताब्दी का समय निर्धारित किया जा सकता है। पादपीठ पर अष्टग्रह अंकित है। अन्य दो प्रतिमाएँ (2604 तथा 1609) किन्हीं तीर्थंकर-प्रतिमाओं के खण्डित शीर्ष हैं जबकि एक अन्य प्रतिमा (2580) किसी स्तंभ का भाग है जिसपर कायोत्सर्ग-मुद्रा में तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है।

द्वि-मूर्तिकाएँ आदि प्रतिमाएँ - यहाँ पर पाँच द्वि-मूर्तिकाएँ हैं जिनमें विभिन्न तीर्थंकरों को कायोत्सर्ग मुद्रा में दर्शाया गया है। एक या दो प्रतिमाओं पर संक्षिप्त अभिलेख भी अंकित है जो अस्पष्ट हैं। लाल कैमूर बलुए पत्थर की द्वि-मूर्तिका (2557, ऊँचाई 1.38 मी.) पर अजितनाथ और संभवनाथ अंकित हैं जबकि श्वेत बलुए पत्थर से निर्मित द्वि-मूर्तिकाओं में ऋषभनाथ और अजितनाथ, पुष्पदंत और शीतलनाथ, धर्मनाथ और शांतिनाथ, तथा मल्लिनाथ और मुनि सुव्रतनाथ (प्रत्येक की ऊँचाई 1.07 मी) अंकित है। इन समस्त प्रतिमाओं में तीर्थंकरों के ऊपर तिहरे छत्र, प्रभामण्डल, उड़ते हुए विद्याधर, इन्द्र तथा तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी आदि अंकित हैं। दो अन्य द्वि-मूर्तिका प्रतिमाएँ (2605 तथा 2610) बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गयी हैं। इन प्रतिमाओं के आधार पर यह अनुमान लगाना गलत न होगा कि कारीतलाई स्थित जैन मंदिर में संभवतः समस्त चौबीस तीर्थंकरों की द्वि-मूर्तिका प्रतिमाएँ स्थापित रही होंगी।

इन द्वि-मूर्तिकाओं के अतिरिक्त संग्रहालय में एक ऐसी प्रतिमा का खण्ड (2595: चौड़ाई 61 सें.मी.) भी है जो संभवतः त्रि-मूर्तिका प्रतिमा का ऊपरी भाग है जिस पर तीन अचिह्नित तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित हैं।

सर्वतोभद्रिका - एक चौमुख प्रतिमा (2555: ऊँचाई 68.5 सें.मी.) में चारों सतहों पर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। इनमें से पार्श्वनाथ को उनके नाग-फण छत्र के आधार पर पहचाना जा सकता है। शेष तीर्थंकर संभवतः ऋषभनाथ, नेमिनाथ तथआ महावीर हो सकते हैं।

सहस्त्रकूट - संग्रहालय में चार सहस्त्रकूट प्रतिमाएँ हैं जिनमें से सबसे उँची प्रतिमा (2519, ऊँचाई 89 सें.मी.) पर चार सतहों पर एकसौ साठ तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं। दूसरे सहस्त्रकूट (2537, ऊंचाई 76 मी.) पर छः सतहों पर एकसौ चवालीस तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। शेष दोनों सहस्त्रकूटों (2541 तथा 2540) पर पाँच सतहों में क्रमशः एक सौ सोलह और एक सौ चौंसठ तीर्थंकर-प्रतिमाएँ हैं।

अंबिका यक्षी प्रतिमायें - बाईसवें तीर्थंकर की यक्षी आम्रा या अंबिका की तीन प्रतिमायें इस संग्रहालय में संरक्षित हैं जिनमें से एक प्रतिमा (0096, ऊँचाई 40.5 से.मी.) सफेद धब्बेदार लाल बलुए पत्थर से निर्मित है जिसमें यक्षी को उसके वाहन सिंह पर ललितासन-मुद्रा में दर्शाया गया है। यक्षी के दायें हाथ में आम्र-लुंबी है। उसका कनिष्ठ शिशु प्रियंकर इसकी गोद में बैठा है जिसे वह बांये हाथ से सहारा दिये हुए है, जबकि उसका ज्येष्ठ शिशु शुभंकर दायें पैर के समीप खड़ा है। यक्षी के पार्श्व में दोनों ओर एक-एक सेविका खड़ी हैं । यक्षी आभूषणों से भली-भांति अलंकृत हैं और उसके चेहरे पर आनंददायी मधुर मुस्कान है। प्रतिमा का ऊपरी भाग खण्डित है। दूसरी प्रतिमा (0034,ऊँचाई 91.5 से.मी.) में यक्षी एक सादा पादपीठ पर आम्रवृक्ष के नीचे त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है। उसके दायें हाथ में आम्र गुच्छ है। इसका कनिष्ठ शिशु गोद में और ज्येष्ठ उसके समीप बायीं ओर खड़ा है। उसके सिर के ऊपर पुष्पित वृक्ष के मध्य पद्मासन नेमिनाथ की प्रतिमा अंकित है। यक्षी के बायीं ओर दायीं ओर क्रमशः एक हाथ जोड़े दाढ़ी वाला उपासक तथा एक उपासिका खड़ी है। यक्षी का वाहन सिंह इसके पैरों के नीचे अंकित है। तीसरी प्रतिमा (2681, ऊँचाई 48 से.मी.) का द्वार-भाग खण्डित है जिसमें एक तोरण के नीचे अंबिका और पद्मावती बैठी हुई हैं।

सरस्वती - लाल बलुए पत्थर की एक सरस्वती-प्रतिमा (2524, ऊँचाई 79 से.मी.) में चतुर्भुजी विद्यादेवी को ललितासन मुद्रा में बैठे दिखाया गया है। यह प्रतिमा अत्यंत क्षतिग्रस्त हो चुकी है जिसमें उसका पैर और हाथ खण्डित हैं तथापि निचले बांये हाथ में पकड़ी हुई वीणा तथा ऊपरी बायें हाथ देखे जा सकते हैं।

रतनपुर से प्राप्त प्रतिमाएं

ऋषभनाथ की प्रतिमाएं- इस संग्रहालय में ऋषभनाथ की दो प्रतिमाएँ हैं जो मूलतः बिलासपुर जिले के रतनपुर से प्राप्त की गयी हैं। इनमें से एक प्रतिमा (0001, ऊँचाई 1.04 मी.) में तीर्थंकर अलंकृत आसन पर तिहरे छत्र के नीचे पद्मासन-मुद्रा में बैठे हुए हैं। उनकी नाक और होंठ खण्डित हैं। उनके सिर के पीछे प्रभा-मण्डल तथा वक्ष पर श्री-वत्स चिह्न अंकित है। छत्र के पार्श्व में दोनों ओर हाथी हैं जिनपर एक-एक व्यक्ति आरूढ़ है। हाथियों के नीचे के फलक में उड़ते मालाधारी पुरुष और विद्याधरों की आकृतियाँ हैं। इनके नीचे तीर्थंकर के पार्श्व में क्रमशः दायीं और बायीं ओर सौधर्म और ईशान स्वर्गों के इंद्र खड़े हुए हैं। अलंकृत आसन पर उनका लांछन वृषभ अंकित है। पादपीठ पर धर्म-चक्र अंकित है जिसके पार्श्व में बैठा हुआ सिंह प्रदर्शित है। पादपीठ के कोनों पर दायीं और बायीं ओर क्रमशः गोमुख और चक्रेश्वरी अंकित हैं जो दोनों ललितासन मुद्रा में हैं। (चित्र क्र. - 5) दूसरी प्रतिमा (0002, ऊँचाई 81 से.मी.) पूर्वोक्त प्रतिमा की भांति ही है परंतु यह प्रतिमा अत्यंत क्षतिग्रस्त है। इसमें तीर्थंकर के सिर पर इकहरा छत्र अंकित है।

चंद्रप्रभ की प्रतिमा - काले पत्थर की इस प्रतिमा (0006, ऊँचाई 73.5 से.मी.) में चंद्रप्रभ ध्यान-मुद्रा में पद्मासनस्थ हैं। यद्यपि यह प्रतिमा खण्डित हो चुकी है तथापि अलंकृत आसन पर अंकित तीर्थंकर के लांछन यथोचित चंद्रमा के आधार पर इसे चंद्रप्रभ की प्रतिमा के रूप में पहचाना जा सकता है। इनके यक्ष-यक्षी भी पादपीठ के कोनों पर बैठे हुए हैं। (चित्र क्र.- 6)

आरंग से प्राप्त प्रतिमाएँ - रायपुर जिले के आरंग से दो खण्डित प्रतिमाएँ (0104 तथा 0105) प्राप्त हुई हैं। संभवत: ये दोनों किन्ही कायोत्सर्ग की प्रतिमाएँ हैं।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

* जैन स्थापत्य एवं कला संपादक (अमलानन्द घोष) भाग- 3, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 197 5. पृ. 607-611 से साभार पुनर्मुद्रित.

1. एक तीर्थंकर (मुनि सुव्रत) प्रतिमा के अधोभाग में लेटी हुई एक महिला आकृति (यक्षी बहुरूपिणी) के लिए द्रष्टव्य, जैन स्थापत्य एवं कला , भाग-1, पृ 172, पाद टिप्पणियां तथा चित्र- 90, सम्पादक (अमलानन्द घोष)
2. उपरिवत् भाग -1, चित्र संख्या- 99.

सिरपुर से प्राप्त आदिनाथ की दो कांस्य मूर्तियां

डॉ. चन्द्रशेखर गुप्त

सिरपुर, प्राचीन श्रीपुर का आधुनिक प्रतिनिधि स्थान, अपनी विशाल पुरा सम्पदा के लिए विख्यात है। यह शरभपुरियों तथा पाण्डुवंशियों की राजधानी का नगर था और भव्य तथा सुन्दर स्थापत्य, शिल्प पुरावशेषों के साथ-साथ कांस्य मूर्तियों से भी समृद्ध था। यहाँ पौराणिक, बौद्ध तथा जैन मतों से संबंधित शिल्पाकृतियाँ पायी गयी हैं। यहाँ से दो जैन और पच्चीस के लगभग बौद्ध कांस्यमूर्तियां प्राप्त हुई थीं। बौद्ध मूर्तियों की चर्चा तो कई विद्वानों ने की है, किन्तु जैन कांस्य मूर्तियों की विशेष उल्लेख नहीं हुआ है। एक तीर्थंकर कांस्य मूर्ति गुजरात के अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई प्राच्य निकेतन के संग्रह में है और मात्र परिचय पुस्तिका में सुंदर तथा रंगीन चित्र सहित संक्षिप्त उल्लेख सहित प्रकाशित है। दूसरी कांस्य मूर्ति मुनि कांतिसागर के संग्रह में थी तथा उनके द्वारा प्रकाशित भी है। किन्तु इस दूसरी प्रतिमा की वर्तनाम अवस्थिति अज्ञात है। प्रस्तुत आलेख में इन दो जैन कांस्य मूर्तियों की चर्चा की जा रही है।

श्री कस्तूरभाई लालभाई द्वारा 1957 ई. में लालभाई दलपतभाई इंस्टिट्यूट ऑफ इंडोलॉजी की स्थापना की गई जिसमें मुनि श्री पुण्यविजय महाराज द्वारा संग्रहित पाण्डुलिपियों के अध्ययन और प्रकाशन की व्यवस्था की गयी। कालान्तर में और अन्य संग्रह तथा वस्तुओं का इस में योग होने के कारण कुछ समय पश्चात् एक संग्रहालय का निर्माण किया गया। इस संग्रहालय में मध्यप्रदेश (छत्तीसगढ़ राज्य सहित) के भी कुछ पुरावशेष संग्रहित हैं। इनमें सिरपुर से प्राप्त एक कांस्य मूर्ति है, जिसका पंजीयन क्रमांक 463 है।[1]

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एक विस्तृत पद्मासन पर पद्मासन और ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। उनका केश सम्भार विशिष्ठ पद्धति में अंकित हैं। उष्णीश के अतिरिक्त दो ओर से माथे तक आकर, कानों तक कमानाकार बनाती केश राशि, कानों के पीछे उतरकर दोनों कंधों पर लहराती हुई बाहु-मूल तक फैली हुई है। उष्णीण और सिर के बाल छोटे-छोटे भँवरदार उभारों में प्रदर्शित हैं। ललाट पर तिलक, पेट पर नाभि और वक्ष पर श्रीवत्स का हल्का सा गढ्ढा बना हुआ है। चेहरा अंडाकार है और सम्पूर्ण शरीर सानुपातिक रुप से गढ़ा हुआ है। आँखें, नासिका, अधरोष्ठ,, कम्बुग्रीवा, सुदृढ स्कन्ध, उन्नत वक्ष, केहरी कटि, पुष्ट भुजाएँ और सभी अंग शिल्प के स्तर के परिचायक हैं।

पद्म को एक सुन्दर और बहु अलंकृत चौकी पर स्थापित किया गया है। चौकी का सम्मुख भाग मध्य में एक चक्र के दोनों ओर बैठे वृषभों से युक्त है। चक्र के दोनों ओर सम्मुख खड़े एक-एक गज और कोनों की ओर एक-एक सिंह अंकित हैं। बायीं और दायीं ओर के सिंह चल मुद्रा में किन्तु मुँह सामने की ओर किये बनाये गये हैं। छह खम्भों द्वारा चक्र, गज एवं सिंह मूर्तियों को अलग-अलग कोष्ठों में विभाजित कर दिया गया है। चक्र तथा वृषभ द्वय एक त्रिदल

पद्म पर स्थापित है, जिसके नीचे पाँच आसनस्थ आकृतियाँ एक पट्टिका पर बनी हैं। इस पट्टिका पर किनारियों के मध्य शून्यों की बनी एक पंक्ति है और नीचे पद्मनाल और पत्रों से सज्जित एक आकृति है, जिसका आकार उलटे घण्टे के समान है। यह चौकी चार पायों पर स्थित है। प्रत्येक पाये की रचना कोणाकार और आकार-प्रकार की मंधियों के संयोजन से की गयी है। सबसे निचला भाग पद्मदल से अलंकृत है और ऊपरी भाग पशु-शीर्षक से युक्त है। बायीं ओर चारों घुटने टेक बैठा हुआ हाथी और दायीं ओर सिंह की आकृतियाँ हैं। सिंह दायीं ओर चलते-चलते रुक कर समाने की ओर देखता हुआ और अगला दायाँ पंजा उठाये हुए अंकित है।

इन दोनों पशुओं का अंकन तीर्थंकर की चौकी के दोनों ओर इस तरह से जोड़ कर किया गया है कि उनके ऊपर, पद्म से सटी एक-एक आसनस्थ मूर्ति अंकित थी जिनका अब संकेत ही मिलता है। ये मूर्तियाँ तीर्थंकर के यक्ष तथा यक्षिणी की थीं। शास्त्रानुसार ऋषभदेव के यक्ष गोमुख तथा यक्षिणी चक्रेश्वरी हैं। कई बार अन्य की अंकन भी प्राप्त होता है। वर्तमान में निस्संदिग्ध रूप से कुछ कहना कठिन है।

मूल चौकी में अंकित सिंहों के ठीक नीचे और सामने के पायों पर एक-एक चामर धारिणियां अंकित हैं। वे पद्मासनस्थ हैं और दायें हाथों में चामर धारण किये हुए हैं। घुटने पर टिके बांये हाथ में कुछ (सम्भवत पोथी) है। पायों पर इन दोनों चामरधारिणियों के सिर के समीप दो-दो छोटी आसनस्थ मूर्तियाँ बनी हैं। चौकी के निचले मध्यभाग पर अंकित पाँच आसनस्थ प्रतिमाओं की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इन सभी की कुल संख्या इस प्रकार नौ हो जाती है। ये मूर्तियाँ सुखासन में बैठी हुई, दाहिना हाथ दाँये घुटने पर टिका और सम्भवत. अभय मुद्रा में उठा हुआ तथा बांया हाथ बांयें घुटने पर कमण्डलु लिये टिका हुआ अंकित है। ये नौ मूर्तियाँ नव ग्रहों का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती हैं। इस प्रतिमा में प्रभावलय का अभाव दृष्टिगत होता है।

संस्था में इस प्रतिमा की अवाप्ति आदि के विषय में कोई जानकारी नहीं है। इसका काल ईस्वी सातवीं शताब्दी के लगभग माना गया है। (देखिए मुख पृष्ठ का चित्र)

दूसरी कांस्य मूर्ति मुनि कांतिसागर को सिरपुर के गन्धेश्वर महादेव मठ के महन्त मंगलगिरि से प्राप्त हुई थी। महन्त को यह मूर्ति भीखमदास पुजारी से मिली थी।[2] सिरपुर में सरोवर के तीर पर स्थित एक मंदिर की खुदाई के दौरान लगभग पच्चीस कांस्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं जो तत्कालीन मालगुजार श्यामसुंदरदास (खण्डूदाऊ) को सौंप दी गयी थी। इसी संग्रह में यह मूर्ति थी।[3] इस संग्रह की अधिकांश मूर्तियाँ बौद्ध देव-देवियों की थी और रायपुर के महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय आदि में संग्रहित हैं। प्रस्तुत मूर्ति एकमात्र ज्ञात मूर्ति है जो जैन सम्प्रदाय से संबंधित है। यह मूर्ति मुनि कांतिसागर के संग्रह में थी किन्तु इसकी वर्तमान अवस्थिति के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती।

प्रस्तुत मूर्ति[4] ध्यानमुद्रा में पद्मासन आदिनाथ दो स्तर वाले भव्य पद्म पर अवस्थित

है। पद्म के नीचे एक आयताकार चौकी है, जिसके सम्मुख भाग पर एक पंक्ति में आठ आसनस्थ मूर्तियाँ बनी हुई हैं। बायें से चौथी तथा अंतिम प्रतिमा को छोड़ सभी का दाँया हाथ अभय मुद्रा में कोहनी तक उठा हुआ है और बांये हाथ में कमण्डलु है। चौथी मूर्ति के दोनों हाथों में दण्ड के समान एक वस्तु पकड़ी हुई है। अंतिम मूर्ति अन्य की तुलना में बहुत बड़े आकार की है और मात्र धड़ तक की गढ़ी गयी है। इसका निचला हिस्सा नागपुच्छ की भांति बना है और हाथ आगे की ओर जुड़े अथवा तर्पण मुद्रा में रूप में बने प्रतीत होते हैं।

ऋषभदेव के लांछन वृषभ का अंकन उनके ठीक नीचे, पद्म के ऊपरी भाग पर किया गया है। पद्म पर एक बिन्दुमय परिधिवाला आच्छादन भी बनाया गया है। इसके दोनों ओर एक-एक देवी मूर्ति क्रमश. वाम और सव्य ललितासन में बैठी अंकित हैं।

बांयी ओर बैठी देवी के बांये मुड़े पैर पर एक बालक बैठा है जिसे वह अपने बांये हाथ से पकड़े हुए है और दायां हाथ अभय की मुद्रा में प्रदर्शित है। लटकते हुए दांये पैर के समीप एक बालक खड़ा आदिनाथ के मुख को निहारता अंकित है। दायीं ओर बैठी देवी की दायां हाथ उनके दांये घुटने पर वरद मुद्रा में टिका हुआ और बांया हाथ चामर अथवा सनाल कमल लिये अंकित है।[5] दोनों देवियों तथा बच्चों के सिर पर मुकुट बना है। देवियाँ सुंदर केशभूषा, ग्रैवेयक हार, कुण्डल, वलय, कटक, करधनी, पादकटक, कंचुकी और अधोवस्त्र से सज्जित हैं।

चौकी के बांयी ओर एक मोटी नाल पर बने पद्म पर वाम ललितासन एक तुन्दिल पुरुष का अंकन है।[6] इसकी केशभूषा भी सुन्दर-अलकावलीयुक्त और त्रिशिखरवाले शिरोभूषण से अलंकृत है। एक बड़ा ग्रैवेयक हार, मणि यज्ञोपवीत, वलय, कटक, अधोवस्त्र और पादकटक आदि से अलंकृत इस मूर्ति का दांया हाथ वरद और बांया हाथ बिजौरा लिये हुए अंकित है।

तीर्थंकर की मूर्ति इकहरे शरीरवाली है। सिर पर धम्मिल शैली का केश सम्भार है, जो उष्णीश पर लटों के रूप में सिर के मध्य सीमांत के दोनों ओर लहरियादार बना है। कान लम्बे हैं जिनके पीछे से दो मोटी लटें निकल कर कन्धे पर होती हुई आगे काँख की ओर आती हुई बनायी गयी है। पृष्ठ भाग पर एक विशाल प्रभावलय बना है जिसके ऊपरी भाग पर एक बढ़ा हुआ सिरा है जिस पर सम्भवत· छत्र लगाया जाता था। प्रभावलय कई परिधियों से आवृत्त है। सबसे बाहरी और भीतरी परिधि ज्वालाकार है तथा इनके मध्य मणियुक्त परिधि है। प्रभावलय सादा है और तीर्थंकर के कटि से लेकर शीर्ष तक के भाग तक व्याप्त है। इसकी तीनों परिधियाँ शीर्ष के ऊपर से कूल्हों तक का भाग घेरे हुए है। (चित्र क्र. - 7)

मुनि कांतिसागर ने इस प्रतिमा को ईस्वी 9वीं शताब्दी का माना है।[7] छत्तीसगढ़ क्षेत्र से ज्ञात यह एकमात्र जैन कांस्य मूर्ति होने का गौरव रखती है यद्यपि इस क्षेत्र से असंख्य प्रस्तर प्रतिमाएँ एवं कुछ स्फटिक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।[8]

उपर्युक्त दोनों तीर्थंकर कांस्य मूर्तियाँ सिरपुर से प्राप्त हुई हैं और एक ही तीर्थंकर - ऋषभनाथ, ऋषभदेव या आदिनाथ की हैं। दोनों की शैली में बहुत अंतर परिलक्षित होता है, जो

काल के अंतराल तथा शिल्पशैली का भी हो सकता है। सिरपुर से प्राप्त बौद्ध कांस्य मूर्तियाँ ईस्वी सातवीं शताब्दी से दसवीं शती की हैं। मुनि कान्तिसागर वाली ऋषभदेव मूर्ति इन्हीं बौद्ध कांस्यों के संग्रह में थी, अतः ईस्वी 9वीं शताब्दी के आसपास मानना उपयुक्त होगा।

अहमदाबाद की कांस्य मूर्ति में प्रभावलय का पूर्णतः अभाव है जबकि दूसरी प्रतिमा में उसी तरह का प्रभामण्डल है जैसा सिरपुर से प्राप्त अन्य कई बौद्ध मूर्तियों पर पाया जाता है। दोनों मूर्तियों पर ग्रहों का अंकन है, किन्तु यहाँ भी एक प्रमुख अंतर है। अहमदाबाद की मूर्ति में स्पष्ट नौ ग्रहों का अंकन है और मुनि कान्तिसागर वाली प्रतिमा पर आठ ग्रहों का। जैसा कि मुनिजी स्पष्ट करते हैं - जैन परम्परा में राहु और केतु को अलग न मान कर एक ही मूर्ति में अंकित किया जाता था। [9] किन्तु राहु का तर्पण-मुद्रा में अंकन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। [10] साथ ही बुध के हाथ का दण्ड भी प्रतिमा लक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अहमदाबाद की कांस्य मूर्ति में बैठी हुई चामरधारणियाँ बनी हुई हैं, जो अपने आप में अनूठी हैं क्योंकि चामरधारक प्रायः स्थानक रूप में ही अंकित पाये जाते हैं। इस मूर्ति में चौकी के बाँयें तथा दायें हाथी तथा सिंह का अंकन किसका प्रतिनिधित्व करता है यह भी स्पष्ट नहीं है। मूल चौकी पर लांछन के नीचे अंकित सिंह तथा गज अवश्य ही सिंहासन और दिग्गज का क्रमशः प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी मूर्ति में धर्मचक्र का अंकन तीर्थंकर के धर्म विजयी स्वरुप को प्रतिबिंबित करते हैं और दोनों ओर वृषभ का अंकन समाकार सिद्धता।

ये कांस्य मूर्तियाँ छत्तीसगढ़ क्षेत्र में जैन धर्म की प्राचीनता के साथ ही साथ परम्परा और शिल्पांकन के सम्बन्ध की दृष्टि से भी महत्व की हैं। परम्परानुसार ऋषभदेव के यक्ष गोमेध एवं यक्षिणी चक्रेश्वरी हैं। यहाँ स्पष्टतः अम्बिका यक्षिणी का अंकन हुआ है, जो सिद्धायिका रूप में अंतिम तीर्थंकर महावीर से जुड़ी हैं। मुनि कांतिसागर ने प्रतिपादित किया है कि ईसापूर्व से यह परम्परा मध्य युग तक यत्र-तत्र मिलती है। मथुरा तथा लखनऊ संग्रहालयों और गुजरात राज्य के ढाँक, आबू आदि स्थानों से ऐसी कई प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें ऋषभदेव के साथ अम्बिका यक्षी का अंकन है। संवत 1493 की एक स्वाध्याय पुस्तिका में भी 'आदिनाह अम्बिका सहिय' (आदिनाथ अम्बिका सहित) का उल्लेख प्राप्त होता है, जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि चक्रेश्वरी यक्षी के पूर्व अम्बिका यक्षिणी ऋषभदेव से जुड़ी थी और कालान्तर में भी यही परम्परा कुछ क्षेत्रों में बनी रही।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

* विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रायोजित एवं शासकीय महाविद्यालय शंकर नगर, रायपुर के तत्वावधान में आयोजित भारत की धातु एवं कांस्य प्रतिमाएं विषय की संगोष्ठी (1-2 मार्च 2001) के अवसर पर पढ़ा गया शोध-लेख.

1. लालभाई दलपत भाई इंस्टिट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी लालभाई दलपतभाई म्यूज़ियम, गुजरात विश्वविद्यालय समीप, अहमदाबाद, पृ. 2 पर रंगीन चित्र, पृ. 7 विवरण.
2. मुनि कांतिसागर, **खण्डहरों का वैभव**, काशी, द्वितीय संस्करण 1959, पृ. 188-190, मुनि कांतिसागर, *"महाकोशल में जैन पुरातत्व"*, प. रविशंकर शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ, इतिहास पुरातत्व खण्ड, नागपुर 1955, पृ. 211.
3. **उपरोक्त**, पृ. 319.
4. यहाँ प्रस्तुत कांस्य मूर्ति का विवरण विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मोर हिन्दी भवन, नागपुर के भूतपूर्व व्यवस्थापक श्री रेवाशंकर परसाई द्वारा दिये गये छायाचित्र करे आधार पर प्रस्तुत है। एतद हेतु लेखक, श्री परसाई का कृतज्ञ हैं।
5. **खण्डहरों का वैभव**, पृ. 189, मुनि इसे चक्रेश्वरी नहीं मानते, किन्तु इसकी पहचान भी नहीं सुझाते, हमें चामरधारणी मानना अधिक उपयुक्त लगता है।
6. इस मूर्ति को मुनि कान्तिसागर कुबेर-तुल्य कहते हैं और वस्तुतः यक्षराज की मानते हैं - उपरोक्त, पृ. 190. वस्तुतः यह मूर्ति कुबेर की ही है जैसा कि बांयें हाथ में पकड़े बिजौरे (मातृफल या बीजपूरक) से स्पष्ट है। तुन्दिल तनु मुख्य शरीर लक्षण है। कुबेर ही यक्षराज कहे गये हैं।
7. **खण्डहरों का वैभव**, पृ. 190.
8. **खण्डहरों का वैभव**, पृ. 177-191.
9. मुनि कान्तिसागर को स्लीमनाबाद (तहसील बहुरीबन्द जिला कटनी, पहले तहसील सिहोरा जिला जबलपुर में) के जंगल से मध्य में आसनस्थ तीर्थंकर के बांयी और दायीं ओर खड़े अष्टग्रहों से युक्त एक शिल्पपट्ट मिला था, जिसे उन्होनें 'नवग्रह-युक्त जिन-प्रतिमा' कहा है - **खण्डहरों का वैभव** पृ. 214-125.
10. तर्पण मुद्रा में राहु की मूर्ति पूर्व भारत में कई स्थानों से प्राप्त हुई है। कोणार्क के ग्रह पट्ट में यह स्पष्ट रुप से दिखाई देता है।

बस्तर में जैन धर्म की प्राचीनता

डॉ. कृष्ण कुमार झा

दण्डकारण्य के अंतर्गत अवस्थित बस्तरांचल में जैन धर्म की स्थिति का अनुमान अनेक प्राचीन जैन मूर्तियों और शिलालेख से लगाया जा सकता है। छिन्दक नागवंशी सोमेश्वर देव जिसने चक्रकोट अर्थात् बस्तर पर ई. 1069 से लगभग 1110 तक शासन किया था, के समय एक अभिलेख [1] से विदित होता है कि सोमेश्वर देव की रानी धरण महादेवी द्वारा भगवान कामेश्वर शिव के निमित्त भूमिदान के अवसर पर कुरुसपाल समीपस्थ 'जिन-ग्राम' से साधु सोमन साक्षी के रूप में उपस्थित हुए थे। इस अभिलेख की अनुमानित तिथि ई. 1069 लगाई गई है।

साधु सोमन के अतिरिक्त अनेक जैन साधुओं के नाम इस अवधि में दिये गये विभिन्न दानादि के अभिलेखों में मिलते हैं। उक्त अभिलेख में साधु उपनामधारी मईधर, आमदेव, देवु, सोम, सहदेव के भी नाम उल्लेखित हैं। चक्रकोट में संलग्न राज्य भ्रमरकोट्य मंडल के अधिपति छिन्दक नाग नृपति मधुरान्तक देव के राजपुर ताम्रपत्र [2] में साधु सहरंग का नाम आया है। इस ताम्रपत्र की तिथि शक संवत् 987, तदनुसार ई. 1065 है। उक्त सोमेश्वर देव के कुरुसपाल अन्य शिलालेख [3] में आश्चर्यजनक रुप से किसी भी जैन साधु का नाम साक्षी के रुप मे नहीं आया है। तथापि यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतः सोमेश्वर देव की रानी धरण महादेवी का झुकाव जैन धर्म की ओर रहा हो क्योंकि उसके शिलालेख [4] में सर्वाधिक जैन साधुओं के नाम साक्षी के रुप में उल्लिखित हैं।

सोमेश्वर देव के पुत्र कन्हरदेव के समय के नारायणपाल शिलालेख [5] में ग्रामदान के साक्षी के रुप में साधु वकोमारय और साधु श्रीधर के नाम आये हैं। इस अभिलेख में उल्लिखित है कि सोमेश्वर देव की माता गुंडमहादेवी द्वारा भगवान नारायण के निमित्त भूमि दान किया गया था। अभिलेख शक संवत् 1033, तदनुसार ई. 1111 में अंकित किया गया था।

छिन्दक नाग युग में शिव और विष्णु देवताओं के लिये भूमिदान के अवसर पर जैन साधुओं की साक्षी के रुप में उपस्थिति तदयुगीन धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है।

जैन प्रतिमाओं की उपलब्धि यदा-कदा बस्तरांचल से होती रही है। छिन्दक नागों की राजधानी गढ़ बोदरा से पार्श्वनाथ की प्रतिमा मिली है। जगदलपुर तहसील के ग्राम घोटियांधोता के समीपस्थ खेत से महावीर की अत्यंत सुंदर विशाल प्रतिमा हाल ही में प्राप्त हुई है। टेटावंड नामक ग्राम में ऋषभनाथ की प्रतिमा स्थित है। इसे विवेकदत्त झा [6] ने ग्यारहवीं ई. सदी का माना है। गढबोदरा और घोटिया समीपस्थ खेत से मिली जैन प्रतिमाएं भी ग्यारहवीं सदी ई. की मानी जा सकती हैं। पार्श्वनाथ की बारसूर से प्राप्त प्रतिमा का भी यही समय निरूपित किया जा सकता है। केसरपाल ग्राम की प्रस्तर प्रतिमा पद्मावती (पार्श्वनाथ की यक्षी) और जगदलपुर के बालाजी मंदिर के प्रवेश द्वार में अंकित तीर्थंकर प्रतिमा पट्ट को भी ग्यारहवीं सदी ई. का निरूपित किया गया है। [7]

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि कलिंग के जैन धर्मावलंबियों सम्राट खारवेल, जिनके प्रभुत्व के अन्तर्गत बस्तरांचल भी था, के समय में जैन धर्म ने बस्तर में प्रतिष्ठा प्राप्त की हो। तदुपरांत छिन्दक नागवंशी नृपतिगण जिन्होंने कर्नाटक के श्रवणबेलगोला समीपस्थ अंचल से, जो जैनधर्म के लिये स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी, के समय में जैन धर्म यहाँ पर्याप्त रूपेण पल्लवित-पुष्पित हुआ अवश्य ही जैन धर्म को छिन्दक नाग युग में राजाश्रय प्राप्त था।

जगदलपुर नगर में नगरपालिका परिषद के पुराने कार्यालय के समक्ष स्थित हनुमान मंदिर में वर्धमान महावीर की मस्तक विहिन प्रतिमा स्थित है। यह प्रतिमा भी नाग युगीन प्रतीत होती है। नागयुग की समाप्ति के साथ ही जैन धर्म की चहल-पहल बस्तरांचल में कम हो गई। जैन प्रतिमाओं की उपलब्धि से अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके लिये जैन मंदिरों का भी निर्माण हुआ होगा किन्तु अद्यतन प्राचीन जैन मंदिर अथवा उसके भग्नावशेष बस्तरांचल में उपलब्ध नहीं हुए हैं। यद्यपि कहा जा सकता है कि जैन धर्म ने प्राचीन बस्तर में अपनी अलग पहचान अवश्य ही बना ली थी।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1 एपि. इण्डिका, भाग - 10, क्र 5 (अ), पृ- 33
2 उपरिवत्, भाग - 9 , क्र 23, पृ- 174-78
3 उपरिवत्, भाग - 10, क्र 4, पृ-28-31
4 उपरिवत्, भाग - 10, क्र 5 (अ), पृ- 32-33
5 उपरिवत्,भाग - 9, क्र 49, पृ- 311-316
6 विवेकदत्त झा, बस्तर का मूर्तिशिल्प, भोपाल, 1989, पृ- 111
7 उपरिवत्, पृ- 12-13
* सम्पादकीय टिप्पणी -

कृष्ण कुमार झा के इस लेख से बस्तरांचल में जैन धर्म की प्राचीनता पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। बस्तर में 'जिनग्राम' का अस्तित्व इस क्षेत्र में जैन धर्म के व्यापक प्रभाव का स्पष्ट परिचायक है। अन्य पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इसकी पुष्टि होती है। इसे लेख में उल्लिखित तथ्यों के आधार पर दो बिन्दुओं पर चर्चा करना उचित प्रतीत होता है -

1 क्या साधु सामण और अन्य साधु जैन धर्म से संबंधित थे ?

2 साक्षी के रुप में इन साधुओं के उल्लेख का प्रयोजन क्या रहा होगा ?

प्रथम बिन्दु का विश्लेषण इसलिए आवश्यक है कि सामण और अन्य साधुओं के नाम के साथ सम्प्रदाय अथवा धर्म सूचक संबोधन नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में इन्हें जैन साधु मानने का औचित्य क्या है ? जहाँ तक साधु सामण का प्रश्न है, इसे जिनग्राम से साक्ष्य के रुप में आमंत्रित किया गया था। जिन ग्राम के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण साधु होने के आधार पर इन्हें जैन धर्म से अनुमानित किया जाना उपयुक्त प्रतीत होता है। ब्राह्मण धर्माचार्यों के नाम के साथ उनके शैव,

वैष्णव अथवा अन्य परम्परा से संबंधित उपाधियों का प्रयोग अभिलेखों में सामान्यतः दृष्टव्य होता है। जिसका यहाँ अभाव है। अत इन साधुओं को जैन धर्मानुयायी माने जाने में विशेष कठिनाई नहीं होती।

दूसरा प्रश्न साक्षी के रूप में इन साधुओं की उपस्थिति के प्रयोजन से संबंधित है। दान में दी गई भूमि के संबंध में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में भविष्य में विवाद न हो, एतद् हेतु जैन धर्मानुयायी साधुओं को दान के अवसर पर साक्षी के रूप में उल्लेख किया जाता रहा होगा।

धार्मिक प्रशासनिक इतिहास की दृष्टि से इन विषयों पर और अधिक विचार शोध की नई दिशा दे सकते हैं। - *लक्ष्मीशंकर निगम*

मल्हार में जैन धर्म के कलावशेष

डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी

दक्षिण कोसल (आधुनिक छत्तीसगढ) के विस्तृत भू-भाग में वैदिक धर्म के साथ-साथ बौद्ध तथा जैन धर्म का विकसित स्वरूप हमें देखने को मिलता है। छत्तीसगढ के विविध कलाकेन्द्रों - आरंग, नारायणपुर, राजिम, सिरपुर, अड़भार, खरौद, जांजगीर, पाली, मल्हार, रतनपुर, शिवरीनारायण, देवबालोद तथा अन्य कलाकेन्द्रों में वैदिक, बौद्ध तथा जैन धर्मों से संबंधित कलावशेषों का प्रचुर संग्रह है। उपरोक्त क्षेत्रों में शैव, वैष्णव, शाक्त धर्मों के प्रचलन के साथ-साथ मध्यकाल में कतिपय जैन स्मारकों तथा प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। इस कार्य में तत्कालीन राजवंशों के अतिरिक्त धनाढ्य व्यापारी तथा जन-साधारण ने भी प्रभूत योगदान दिया।

जैन धर्म का प्रचार छत्तीसगढ में अवश्य था। इसका प्रमाण आरंग, सिरपुर, मल्हार, धनपुर, रतनपुर इत्यादि स्थानों में जैन तीर्थंकरों की कई मध्यकालीन मूर्तियों से मिलता है। अतएव इसमें संदेह नहीं है कि दक्षिण कोसल में जैन-धर्म का प्रसार हुआ होगा। आरंग के भांडदेउल नामक कलात्मक मंदिर में तीन जैन प्रतिमाएँ हैं, जो क्रमशः अजितनाथ, नेमिनाथ और श्रेयांसनाथ की कही जाती है। धनपुर में विभिन्न जैन कलाकृतियों के अतिरिक्त तीर्थंकर की एक विशाल मूर्ति है, जो पत्थर तराशकर बनायी गया है।

महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में विविध जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का प्रचुर संग्रह है।[1] यहाँ के संग्रह में कारीतलाई (जिला जबलपुर) से लाई गई त्रिपुरी के कलचुरि शासकों के शासन काल (ई. 10-11 वीं शती) की तीर्थंकर की प्रतिमाओं की बाहुलता है। छत्तीसगढ क्षेत्र के विभिन्न स्थलों सिरपुर (पार्श्वनाथ, ई. 7वीं शती), रतनपुर (ऋषभनाथ, चन्द्रप्रभु, ई. 12 वीं शती) दक्षिण कोसल की कलचुरिकालीन (ई. 12 वीं शती) की कलाकृतियां विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। सिरपुर से नवग्रहों युक्त ऋषभदेव की प्राचीन प्रतिमा मिली है।[2] सिरपुर से ही प्राप्त शिशु को गोद में लिए आम्रवृक्ष के नीचे खड़ी मातृका अम्बिका की प्रतिमा उल्लेखनीय है।[3]

सिरपुर की खुदाई में प्राप्त पार्श्वनाथ तीर्थंकर की एक जैन प्रतिमा यह आभास देती है कि सिरपुर में इस काल (8-9 वीं शताब्दी) में जैन धर्मावलम्बियों का भी आवास रहा है।[4] राजिम के सोमेश्वर मंदिर के अहाते में संरक्षित पार्श्वनाथ प्रतिमा जैन-धर्म का ही एक उदाहरण है।[5] इसी प्रकार छत्तीसगढ के प्रमुख कलाकेन्द्रों - अड़भार, आरंग, डोंगरगढ, धनपुर, पुजारीपाली, पेन्ड्रा, बूढ़ीखार, मल्हार, रतनपुर, सत्ती, सिरपुर तथा कतिपय अन्य कलाकेन्द्रों में जैन-धर्म से संबंधित स्मारक तथा प्रतिमाओं की उपलब्धि का विवरण मिलता है।[6]

उपरोक्त स्थलों में उपलब्ध जैन कलाकृतियों के विवरण से इस बात की पुष्टि होती है कि छत्तीसगढ़ क्षेत्र के धार्मिक प्रवाह में वैदिक, जैन और बौद्ध धर्मों का प्रचुर विकास हुआ। इस क्षेत्र की कलाकृतियों में मध्यकालीन कला का विकसित स्वरूप दिखायी देता है। उपरोक्त तीनों सम्प्रदायों में कई तत्व समान होने से उनकी कई विशेषताएँ कालान्तर में एक-दूसरे धर्म में समाहित हो गई।

मल्हार (कलचुरिकालीन मल्लालपत्तन) बिलासपुर जिला मुख्यालय से 32 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। बिलासपुर से जांजगीर-शिवरीनारायण जाने वाली सड़क पर 18 कि.मी. दूर मस्तूरी है। वहाँ से जोंधरा मार्ग पर मल्हार तक 14 कि.मी. कच्ची सड़क है। ऐतिहासिक काल में उत्तर भारत से दक्षिण-पूर्व की ओर जाने वाले प्रमुख मार्ग पर स्थित होने के कारण मल्हार का महत्व बढ़ा। यह नगर धीरे-धीरे विकसित हुआ तथा वहां शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध तथा जैन मतावलम्बियों के मंदिरों, मठों तथा मूर्तियों का निर्माण बड़े रूप में हुआ। जैन तीर्थंकरों, यक्षों-यक्षियों (विशेषतः अम्बिका) की प्रतिमाएँ भी यहाँ मिली हैं।[7]

मल्हार तथा समीपस्थ स्थित बूढ़ीखार ग्राम की कतिपय जैन-प्रतिमाओं का विवेचन करते हुए डॉ. रमानाथ मिश्र[8] ने विचार व्यक्त किया है, "मल्हार की कतिपय जैन-प्रतिमाएँ उपरोक्त वर्णित प्रतिमाओं के समसामयिक और शैलीगत साम्यता लिए हुए है। ये सभी प्रतिमाएँ जीर्णशीर्ण परगनिहादेव मंदिर में संग्रहित हैं। परवर्तीकाल की कुछ अन्य जैन-प्रतिमाएँ मल्हार स्थित श्री अमरनाथ साव के घर की दीवार में लगा दी गई हैं। परगनिहादेव के मंदिर की प्रतिमा तीर्थंकर आदिनाथ की है। एक अन्य जिन-प्रतिमा मंदिर के प्राङ्गण से उत्खनित की गई हैं।"

मल्हार के स्थानीय संग्रहालय, नंदमहल (केवटपारा), पीपल-चौरा (प्राथमिक शाला के समीप), स्व. श्री अमरनाथ साव के मकान के समीप दीवाल में चुनी हुई जैन-तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ तथा बूढ़ीखार ग्राम के समीप परगनिहा देव मंदिर में जैन-तीर्थंकरों, यक्ष-यक्षिणियों चतुर्विंशतिपट्ट (चौबीसी पट्ट) तथा जैन शासन देवी अम्बिका की स्वतंत्र प्रतिमाएँ देखने को मिली हैं। उपरोक्त स्थलों में संग्रहित जैन-धर्म से संबंधित विविध प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से विशेष महत्व की हैं। इन मूर्तियों के कलात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि मल्हार तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में ई. 8वीं शती से लेकर 13 वीं शती तक अन्य धर्मों के साथ जैन-धर्म का भी प्रचलन रहा। ये कलाकृतियाँ तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक सहिष्णुता की परिचायक हैं।[9]

मल्हार के विविध स्थलों तथा समीपवर्ती क्षेत्र बूढ़ीखार (परगनिहादेव मंदिर) में संग्रहित जैन-धर्म से संबंधित कतिपय महत्वपूर्ण प्रतिमाओं का परिचयात्मक संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

1. परगनिहादेव मंदिर

महावीर - परगनिहादेव मंदिर (आधुनिक) के अंदर 2.60 मी. ऊंची कायोत्सर्ग मुद्रा में जैन-धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर की विशाल प्रतिमा स्थापित है। सौम्य मुखमुद्रा, सिरोभाग के ऊपर त्रिछत्र, उष्णीश, लम्बवत् कर्ण, वक्ष पर "श्रीवत्स" आदि देवत्व के प्रतीक हैं। दोनों पार्श्वों में उपासक दृष्टव्य हैं। (काल लगभग 12 वीं शती ई.)

ऋषभनाथ - परगनिहादेव मंदिर-द्वार के दोनों पार्श्वों में पूर्वाभिमुख प्रथम जैन-तीर्थंकर ऋषभदेव की ध्यानस्थ भाव वाली दो प्रतिमाएँ दीवार में चुनी हैं। दोनों प्रतिमाओं के सिरोभाग के पीछे प्रभामण्डल, त्रिछत्र तथा वक्षस्थल पर "श्रीवत्स" का अंकन है। छत्र के ऊपर गज-अभिषेक दृष्टव्य हैं। ऊपर के दोनों पार्श्वों में माला लिए विद्याधर युगल तथा नीचे उपासक और परिचारक परिलक्षित हैं। नीचे चरण-चौकी के मध्य भाग में लांछन "वृषभ" का अंकन है। विवेच्य दोनों प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। (काल लगभग ई. 12 वीं शती)

उपरोक्त प्रतिमा के समीप आधुनिक नहर के मध्य आसनस्थ तीर्थंकर प्रतिमा तथा समीप ही पीपलवृक्ष के नीचे कई अन्य तीर्थंकरों की खण्डित प्रतिमाएँ दृष्टव्य हैं।

2. नंदमहल

मल्हार ग्राम के केवटपारा नाम से अभिहित स्थल में एक ऊंचे चबूतरे पर वैदिक तथा बौद्ध प्रतिमाओं के अतिरिक्त जैन तीर्थंकरों की कुछ प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं, ये प्रतिमाएँ चिकने काले कसौटी पत्थर (ग्रेनाइट) पर बनी हैं। यहाँ संग्रहित तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से कलचुरिकालीन हैं।

पार्श्वनाथ - जैन सम्प्रदाय के 23वें तीर्थंकर हैं। ध्यानस्थ पार्श्वनाथ के ऊपर सर्पफणों का छत्र है। ऊपर दोनों पार्श्वों में माला लिए विद्याधर-युगल, गजाभिषेक आदि का अंकन है। आसन-चौकी के मध्यभाग में लांछन "सर्प" का अंकन है। समीप में संबंधित शासन यक्ष-यक्षी (धरणेन्द्र-पद्मावती) आसनस्थ प्रदर्शित हैं।

यहीं ध्यानस्थ मुद्रा में जैन-सम्प्रदाय के सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की आसनस्थ प्रतिमा है। जिसकी आसन-चौकी के दोनों बाह्य पार्श्वों में सिंह आकृतियाँ तथा मध्य भाग में लांछन "स्वस्तिक" का अंकन है। फलक के बाह्य भाग में उपासक, परिचारक आदि का सुरुचिपूर्ण अंकन है।

एक अन्य स्थापत्य पाषाण-खण्ड पर नौ तीर्थंकरों को एक साथ प्रदर्शित किया गया है, जिसके मध्य तथा बाह्य पार्श्वों में ध्यानस्थ तीन तीर्थंकर तथा शेष स्थानक हैं। छत्र तथा प्रभामण्डल सहित चैत्याकार सज्जापट्टिका, मणिवृत्त तथा मकर-मुख आदि के अंकनों सहित विशेष कलात्मक हैं।

3. मल्हार-संग्रहालय

मल्हार के स्थानीय संग्रहालय में समीपवर्ती क्षेत्रों से एकत्रित की गई विविध प्रतिमाओं का प्रचुर संग्रह है। इस संग्रह में विविध जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के अतिरिक्त आम्रवृक्ष के नीचे शिशु को गोद में लिये खड़ी अम्बिका की प्रतिमाएँ विशेष कलात्मक हैं। जैन-तीर्थंकरों में ऋषभनाथ, संभवनाथ, चंद्रप्रभु, पद्मप्रभु, पार्श्वनाथ, महावीर, चौबीसी तीर्थंकरपट्ट आदि उल्लेखनीय हैं। आसनस्थ तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में विविध तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से उत्तर मध्यकाल की प्रतीत होती हैं।

जैन-यक्षी पद्मावती - चतुर्भुजी जैन यक्षी पद्मावती की एक कलात्मक प्रतिमा मल्हार के स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित है। इसे जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ से संबद्ध शासनदेवी कहा गया है। देवी को पीठिका के ऊपर ललितासन में बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है। चारों हाथों में क्रमशः अंकुश, पाश, कमल तथा फल दृष्टव्य हैं। सिर के पीछे चक्राकार प्रभामण्डल, ऊपर सर्पफणों का छत्र, अलंकृत मुकुट, कटावयुक्त गोलाकार कर्णाभूषण, ग्रैवेयक, ढीला स्तनहार, कंकण तथा पैरों में नुपुर आदि विविध अलंकरणों का कलात्मक अंकन है। शासनदेवी की सौम्य मुखाकृति विशेष प्रभावोत्पादक है। विवेच्य प्रतिमा का शारीरिक सौष्ठव तथा कलात्मक अंकन सुरुचिपूर्ण है। (काल लगभग ई. 11वीं शती)

जैन तीर्थंकरों की कतिपय प्रतिमाएँ पीपलचौरा (प्राथमिक शाला के समीप) तथा श्री अमरनाथ साव के मकान की दीवाल पर चुनी है। ये सभी प्रतिमाएँ लगभग ई. 11वीं शती की प्रतीत होती हैं।

उपरोक्त समग्र विवेचन से ज्ञात होता है कि विवेच्य क्षेत्र मल्हार में छत्तीसगढ़ के अन्य कला केन्द्रों के समान ही जैन-धर्म का प्रसार हुआ। विवेच्य क्षेत्र में शैव एवं वैष्णव की अपेक्षाकृत जैन-धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार न था, तदापि यहाँ 7-8वीं शती ईस्वी से जैन-स्मारकों तथा प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ होने के पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। मल्हार उत्खनन में जैन-धर्म विषयक प्रामाणिक पुरावशेष उपलब्ध नहीं हुए, तथापि मल्हार के पूर्वोक्त स्थलों में संग्रहित विविध तीर्थंकरों, यक्ष-यक्षी प्रतिमाओं, चौबीसी-पट्ट आदि कलावशेषों के अध्ययन से जैन-धर्म पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है। ओप-युक्त ग्रेनाइट पत्थरों से निर्मित तीर्थंकर प्रतिमाओं में कलचुरि कला का रोचक लाघव दिखायी देता है। अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा यहाँ की जैन प्रतिमाओं में उत्कीर्ण लेखों का अभाव है। निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि मल्हार तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में ई. 8वीं शती से 13वीं शती तक वैदिक धर्म के वर्चस्व तथा बौद्ध-धर्म के चरमोत्कर्ष के काल में अन्य कलाकेन्द्रों की भांति जैन-धर्म का यहाँ व्यापक प्रचार-प्रसार न हो सका, तथापि तत्कालीन राजवंशों की धार्मिक सहिष्णुता, जनसाधारण की अभिरुचि तथा व्यापारिक गतिविधियों के प्रसार के साथ यहाँ जैन-धर्म पल्लवित हुआ। दक्षिण कोसल के कलचुरियों के

शासनकाल में मल्हार के अंतर्गत सम्मिलित भू-भाग में वैदिक धर्म (शैव, वैष्णव, शाक्त) जैतपुर (प्राचीन जयतिपुर अथवा चैत्यपुर) क्षेत्र में बौद्ध-धर्म तथा बूढ़ीखार का क्षेत्र जैन कलाकेन्द्र के रूप में विकसित हुआ। उक्त क्षेत्रों में तत्कालीन समाज, धार्मिक सहिष्णुता की भावना से अभिभूत था। सभी सांस्कृतिक तत्व एक-दूसरे में घुल-मिल गए थे और सौहार्द्र की भावना का परिपालन होता था। इस प्रकार विवेच्य क्षेत्र में धार्मिक सहिष्णुता की सांस्कृतिक त्रिवेणी, मध्यकाल में निरन्तर अबाध गति से प्रवाहित रही है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. बालचन्द्र जैन, **महन्त घासीदास संग्रहालय, सूचीपत्र- भाग 2, पाषाण प्रतिमाएँ,** पृ. 4,9,18,31,32
   शिवकुमार नामदेव, *दक्षिण कोसल की कलचुरिकालीन शिल्प संपदा*, **प्राच्य-प्रतिभा**, अंक 5, (खण्ड 2) पृ. 165-66
2. मुनिकांतिसागर, **शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ**, इतिहास खण्ड, पृ. 211
3. मुनिकांतिसागर, *सिरपुर*, **मध्यप्रदेश संदेश**, 13 जून 1970, पृ. 61
4. जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी, **मध्यप्रदेश के कलामण्डल**, भोपाल, 1972, पृ. 78
5. विष्णुसिंह ठाकुर, **राजिम**, भोपाल, पृ. 113, फलक- 20 (1)
6. राजकुमार शर्मा, **मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ**, भोपाल, 1974, पृ. 272-92
7. कृष्णदत्त बाजपेयी एवं श्याम कुमार पाण्डेय, **मल्हार (1974-78)**, सागर, 1978, पृ. 3,10,11
8. आर.एन. मिश्रा, *जैन इमेज़ेज़ एण्ड देयर प्रिडोमिनेंट स्टाइल्स: डाहल एण्ड साउथ कोसल रीज़न* **प्राच्य-प्रतिमा**, अंक 5 (खण्ड 2) पृ. 1-13
9. कृष्णकुमार त्रिपाठी एवं रघुनन्दन प्रसाद पाण्डेय, **मल्हार दर्शन**, भोपाल, 1980

आरंग का जैन स्थापत्य एवं कला

वेद प्रकाश नगायच

पूर्व मध्य प्रदेश के दक्षिण पूर्व क्षेत्र में स्थित रायपुर, बिलासपुर एवं बस्तर संभागों से युक्त क्षेत्र छत्तीसगढ़ के नाम से ज्ञात है, अब छत्तीसगढ़ राज्य बन गया है। इस भू-भाग का अधिकांश भाग (पूर्व बस्तर रियासत को छोड़कर) तथा पश्चिमी उड़ीसा का क्षेत्र "दक्षिण कोसल" के नाम से प्रसिद्ध था। भारतीय पुरातत्व, संस्कृति एवं इतिहास के क्षेत्र में इसका, महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

रायपुर जिले में स्थित प्राचीन आरंग के महत्वपूर्ण एवं पुरातत्वीय सम्पदा से सम्पन्न रहा है। चिंतकों, विचारकों का आश्रय स्थल आरंग प्राचीन काल में एक विशाल संस्कृति एवं व्यापारिक केन्द्र रहा है। नगरीय गहमागहमी से भागकर नैसर्गिक सुन्दरता से परिपूर्ण महानदी के समीप स्थित मंदिरों में परमार्थ का चिंतन मुनियों, ऋषियों, साधकों ने किया तथा ज्ञान, विज्ञान तथा अध्यात्म की धारा यहाँ प्रवाहित थी।

आरंग में भांड देवल मंदिर इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण जैन मंदिर है जो मंदिर वास्तु के साथ-साथ मूर्ति कला के दृष्टि से भी उत्कृष्ट एवं प्रशंसनीय है।

रायपुर से राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 6 पर रायपुर-सम्बलपुर मार्ग पर 36 वें कि.मी. पर आरंग 21.12' उत्तरी अक्षांश एवं 81.59' पूर्वी देशांतर पर स्थित हैं। दक्षिण-पूर्व रल्वे के रायपुर-वाल्टियर रेल मार्ग पर आरंग एक छोटा रेल्वे स्टेशन है। पेसेन्जर गाड़ियां इस स्टेशन पर रुकतीं हैं। रायपुर से आरंग पहुँचने हेतु बसें, जीपें, टैक्सी हर समय उपलब्ध रहतीं हैं। आरंग से महासमुन्द के मध्य भी बस सेवा एवं टैक्सी की सुविधाएं उपलब्ध हैं। यहाँ से 6 कि.मी. दूर पूर्व की ओर महानदी बहती है।

आरंग नगर के नामकरण से संबंधित एक पौराणिक कथा प्रचलित है। इसके अनुसार भगवान कृष्ण ने हैहय राजा मोरध्वज से उनके पुत्र ताम्रध्वज के शरीर को दो भागों में विभक्त कर अपने वाहन सिंह के भोजन के लिए देने को कहा ता। ऐसी अनुश्रुति है कि मोरध्वज ने पुत्र को आरा से काटकर दो भागों में विभक्त करने की घटना इसी नगर में घटित हुई थी इसलिए 'आरा' एवं 'अंग' इन दो शब्दों को मिलाकर इस नगर का नाम आरंग रखा गया और उसी समय से आज तक आरा का उपयोग यहाँ पर नहीं किया जाता है।

प्राचीन समय से ही यह नगर महत्वपूर्ण होने के आभास देता है। पुराने भवनों एवं प्रतिमाओं के भग्नावशेष पूरे शहर में 2.5 कि.मी. लंबाई एवं 1.5 कि.मी. चौड़ाई में फैले हुए हैं। आरंग नगर में बहुसंख्यक मंदिर व मूर्तियों के अवशेष मिलते हैं जो इस तथ्य के द्योतक है कि प्राचीन काल में यह नगर सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से काफी समृद्धशाली था। जैन मंदिर कैसे स्थान पर निर्मित किए जाने चाहिए इसके बारे में जयसेन ने नगर के शुद्ध एवं

स्वच्छ क्षेत्र में, नदी के समीप में, पवित्र तीर्थ भूमि में विराजित मंदिरों को प्रशस्त कहा है। "अपराजित पृच्छा" में जैन मंदिरों को शांतिदायक स्वीकार किया गया है एवं उन्हें नगर के मध्य में बनाने का विधान है। उक्त सभी लक्षण हम आरंग के मंदिरों में देखते हैं।

भाँड देवल मंदिर

भाँड देवल मंदिर भूविन्यास की दृष्टि से ऊंची जगती पर वेष्टित पश्चिमाभिमुखी है। यह मंदिर ताराकृति, पंचरथ एवं भूमिज शैली का है। यद्यपि इस शैली का उद्भव एवं विकास मालवा में हुआ है, परन्तु इस शैली का यह एकमात्र मंदिर छत्तीसगढ़ में है। मंदिर का अर्धमंडप एव मंडप विनष्ट हो चुका है। (चित्र क्र 8)

मंदिर के उर्ध्वविन्यास में जगती में सर्वप्रथम कमल पत्रावली फिर गजथर, अश्वथर, नरथर का अंकन है। नरथर में नृत्य, संगीत एवं दृश्य है, इसमें समुद्र-मंथन का दृश्य भी बहुत आकर्षक है। जगती के ऊपर अधिष्ठान में खुर का हीरिक अंकन तथा कुम्भ का शतरंज आकार में चित्रण है तथा ऊपर के भाग में प्रतिमाएँ हैं। कलश का मणियों, अर्न्तपट्ट तथा कमल पत्रावली एवं याचिका से अलंकरण है।

जंघा भाग में दो पंक्तियों में नीचे-ऊपर अंकन किया गया है। जंघा भाग को इस अलंकरण में नृत्यरत अप्सरा, दाढ़ीधारी पुरुष, यक्षी, देव, व्याल तथा मृदंग, ढोल आदि बजाते स्त्री-पुरुष एवं विविध मिथुन-दृश्यों का शिल्पांकन है।

शिखर - जंघा के ऊपर शिखर भूमिज प्रकार का है। यह मंदिर क्षेत्रीय कलचुरि शैली का प्रतिनिधित्व करता है। शिखर पांच तलों युक्त है जिसके दो लघु शिखर पृथ्वी के समान्तर एवं पांच लम्बवत पंक्तियों में हैं। जिनका अंकन चारों ओर हुआ है। शिखर की मूलमंजरी का अलंकरण चैत्य-गवाक्षों से हुआ है। उत्तरी एवं दक्षिणी ओर की मूलमंजरी, जो वर्तनाम में शेष है, के आले में ललितासन में बैठी चतुर्भज देवी का अंकन है। मूलमंजरी के ऊपरी भाग में तीर्थंकर पद्मासन में ध्यान मुद्रा में खड़े हैं। शिखर के ऊपर एक विशाल गोल आमलक है। इस मंदिर एवं इसके शिखर का परवर्तीकाल में मरम्मत कार्य हुआ है। मंदिर अब लम्बवत सादा सतह युक्त है। उत्तर पूर्व एवं दक्षिण पूर्व का भाग बहुत सा शिखर भाग विनष्ट हो चुका है। तथा पुनर्निर्माण ईंट व सीमेंट गारे से हुआ है। परन्तु अभी भी शिखर सुन्दर व आकर्षक है। कनिंघम ने लिखा था कि यह मंदिर सर्वेक्षण केन्द्र के रुप में प्रयुक्त रहा। शिखर के पार्श्वभाग लोहे की पट्टियों से बंधे हैं जो शिखर के चारों ओर दो पंक्तियों में हैं।

जगती - इस मंदिर की आधुनिक जगती 8 10 मीटर लम्बी 6 50 मीटर चौड़ी एवं 1.85 मीटर ऊंची मंदिर के अग्रभाग में बनी है, जो मंदिर की द्वार चौखट की शिला तक ऊंची है। यह जगती ऊंची सतह की है तथा 4 सीढ़ी चढ़कर मंदिर की द्वार चौखट तक पहुँचते हैं।

गर्भगृह - गर्भगृह के फर्श की सतह द्वारशिला से गहरी है जिसमें 3 सीढ़ियां उतर कर गर्भगृह में प्रवेश होता है। गर्भगृह में तीन जैन तीर्थंकर की काले पत्थर की ओपदार स्थानक प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं। ये प्रतिमाएं हैं - शान्तिनाथ, श्रेयांसनाथ एवं अनन्तनाथ, जो अलंकृत फ्रेम में प्रतिष्ठापित हैं। मध्यप्रतिमा शांतिनाथ की है जिनके लांछन चिन्ह के रुप में दो हिरण पादपीठ पर अंकित हैं, दायीं ओर श्रेयांसनाथ की प्रतिमा, पादपीठ पर एकश्रृंग लांछन सहित तथा बायीं ओर अनन्तनाथ की प्रतिमा पादपीठ पर सेही लांछन सहित है। सभी तीर्थकरों के दोनों ओर त्रिभंगमुद्रा में चंवरधारी पुरुष एवं द्वारपाल का अंकन है। तीनों तीर्थंकरों के पादपीठ के दोनों ओर उनके यक्ष एवं यक्षी का भी अंकन है। सभी तीर्थकरों के वितान में गजाभिषेक त्रिछत्रावली एवं माला लिए विद्याधरों का दोनों ओर अंकन है। (चित्र क्र 9)

गर्भगृह की छत पर ताडपत्रों एवं गुलाबों को सुंदर रुप से उकेरा गया है तथा चारों किनारे के शेडों पर आकर्षक अप्सराओं का अंकन है जो छत के कोनों से जुड़ी हुयी है। छत के शीर्ष पर सुंदर उत्फुल्ल कमल बना है।

अन्तराल - यह छत सपाट एवं वर्गाकार अंकन युक्त है। अंतराल एवं गर्भगृह के मध्य के दीवाल स्तम्भ में नीचे की ओर दो नारी प्रतिमाओं का अंकन है। दीवाल स्तम्भ आयताकार तथा दो भागों में गुलाब का अंकन युक्त है। स्तम्भ शीर्ष सादा तथा मोल्डिंग्स में दो पद्मों का अंकन है।

गर्भगृह की द्वार-शाखा पूर्णरुपेण विनष्ठ है केवल द्वारशिला शेष है। मध्य में मन्दाकर एवं दोनों ओर हाथियों का अंकन है। मंदिर का बाह्य भाग 6.90 मीटर चौंडा तथा लगभग 20 मीटर ऊंचा है।

इस मंदिर में अप्सरा प्रतिमाओं के नृत्य, मृदंग वादिका आदि के विविध दृश्य हैं। मंदिर में जैन तीर्थंकर, यक्ष, यक्षियों के अलावा मिथुन के विविध दृश्य हैं। कोई भी अभिलेख मंदिर से संबंधित नहीं पाया गया है। कुछ कुटिल लिपि में शिल्पियों के चिन्ह (मेसर्स मार्क) जरूर पाये गये हैं।

यह मंदिर स्थापत्य एवं कला की दृष्टि से 11 वीं शती ई. का कलचुरि कला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

अन्य स्मारकों के जैन पुरावशेष

चंडी मंदिर - यह मंदिर, बाघेश्वर मंदिर के समीप स्थित है। यह प्राचीन मंदिर तथा इसका आधुनिक पुनरुद्धार हुआ है। इस मंदिर में भी चार दीवारी है। मंदिर के मंडप में 6 प्रतिमाएं हैं। जो अत्यंत सुन्दर एवं सोमवंशी कला की परिचायक है। इसमें से एक प्रतिमा, ध्यान मुद्रा में पद्मासन में बैठे तीर्थंकर आदिनाथ की है। इसमें जटाएं कंधे तक लहरा रही हैं, सिर पर कुंचित केशों का अंकन, वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह, पादपीठ पर वृषभ का अंकन है। आदिनाथ के उपर गजाभिषेक करते हुए त्रिछत्र वितान का अंकन है तथा दोनों ओर माला लिए विद्याधर का चित्रण

हैं। पादपीठ के दोनों पार्श्वों में चक्रेश्वरी यक्षी एवं गोमुख यक्ष का चित्रण है।

दूसरी प्रतिमा में स्थानक तीर्थंकर के भग्न पैर के अवशेष हैं। चंडी मंदिर प्रांगण की सामने दीवाल में अनेक प्रतिमाएं उत्खचित हैं। इसमें एक तीर्थंकर की लघु प्रतिमा आवक्ष (30X25 से.मी.) है तथा दूसरी में तीर्थंकर पार्श्वनाथ उदर से निचला भाग खण्डित (36X42 से.मी.) शेष है।

महामाया मंदिर - यह मंदिर नगर में पश्चिमी भाग में महामाया तालाब के किनारे स्थित है। यह भी प्राचीन मंदिर था, जिसका जीर्णोद्धार कर नवीनीकरण हुआ है।इस मंदिर के चारों ओर चारदीवारी है, जिसकी दीवारों पर प्राचीन प्रतिमाएं लगी हैं तथा मंदिर के मंडप में भी प्रतिमाएं लगी हैं जिन्हे सिंदूर से पोत दिया गया है। इसकी दीवालों में जैन तीर्थंकर की सुंदर कायोत्सर्ग प्रतिमाएं लगी हैं। इसमें अजितनाथ, जिसकी चौकी पर लांछन चिन्ह हाथी, नेमिनाथ (लांछन चिन्ह शंख) तथा श्रेयांसनाथ (लांछन चिन्ह श्रृंग)। उल्लेखनीय है कि इन सभी के ऊपर गजाभिषिक्त त्रिछत्रयुक्त अंकन है तथा दोनों ओर माला लिये विद्याधर हैं। पादपीठ के दोनों ओर तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी बने हैं। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म से संबंधित अन्य प्रतिमाएं भी यहाँ उपलब्ध हैं।

हनुमान मंदिर - महामाया तालाब के पश्चिमी किनारे पर हनुमान मंदिर है। इस मंदिर का पुनरुद्धार कर नवीनीकरण किया गया है। मंदिर के गर्भगृह में बाल हनुमान एवं आलीढ़ मुद्रा में खड़ी हनुमान प्रतिमाएं स्थापित हैं। दोनों प्रतिमाएं सिंदुर से पुती हैं। यह मंदिर तालाब के तट पर स्थित एवं उत्तराभिमुख है। इसकी बाह्य भित्तियों पर कुछ सोमवंशीय प्रतिमाएं प्रवेश द्वार के दोनों ओर लगी हैं। जिसमें एक तीर्थंकर की कायोत्सर्ग प्रतिमा (107 X 30 से.मी.) लगभग 10वीं शती ई. की है। इसके अतिरिक्त इस मंदिर में ब्राह्मण धर्म संबंधित कुछ प्रतिमाएं तथा स्थापत्य अवशेष भी उपलब्ध हैं।

संदर्भ सूची

1. ए. कनिंघम, आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया रिपोर्ट, खण्ड - 7, रिप्रिंट- 1996.
2. कृष्णदेव, टेम्पल आफ नार्थ इंडिया, 1967.
3. कृष्णदेव, *जैन टेम्पल काल्ड भांड देवल एट आरंग*, आस्पेक्टस् आफ जैन आर्ट एंड आर्किटेक्चर (संपादन यू.पी शाह एवं एम. ए. ढाकी), 1975.
4. ए.घोष, (सम्पादक), जैन आर्ट एंड आर्किटेक्चर, 1975.
5. आर.एन. मिश्रा, *जैन इमेजेज एंड देयर प्रिडोमिनेंट स्टाइल्स, डाहल एंड साउथ कोसल रीजन*, प्राच्य प्रतिमा, अंक - 5, भाग - 2.
6. बी. एल नागार्च, *"भांड देवल एंड अदर टेम्पल इन आरंग"* सोर्स मेटीरियल्स ऑफ छत्तीसगढ़ (संपादक - जे. आर. काम्बले) 1987.

बिलासपुर संग्रहालय की जैन शिल्प-सम्पदा

राहुल कुमार सिंह

दक्षिण कोसल के प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व की दृष्टि से बिलासपुर क्षेत्र अत्यधिक समृद्ध है। यहाँ के विशिष्ट कला केन्द्रों के रुप में मल्हार, ताला, रतनपुर, अड़भार, शिवरीनारायण आदि स्थलों को विशेष रुप से रेखांकित किया जा सकता है। इस क्षेत्र में दक्षिण कोसल के प्राचीन राजवंशों शरभपुरीय, सोम-पाण्डुवंशीय तथा कलचुरि के काल में निर्मित शैव, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन धर्म से संबंधित शिल्प सम्पदा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। तत्कालीन राजवंशों की धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता के फलस्वरुप सभी धर्मों के देवालय, मठ और विहारों का निर्माण सम्पूर्ण दक्षिण कोसल क्षेत्र में दिखाई देता है।

बिलासपुर जिले में शरभपुरीय एवं पाण्डुवंशीय राजाओं के शासनकाल में मल्हार और कलचुरियों के शासन काल में रतनपुर विशेष महत्व के रहे हैं। छत्तीसगढ़ अंचल में प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेषों से निर्मित अनेक देवालयों में शैव, वैष्णव के साथ-साथ बौद्ध और जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ भी भित्तियों में जड़ी हुई हैं तथा कहीं-कहीं ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिष्ठापित भी हैं, जिनकी पूजा-आराधना सम्मिलित रुप से की जाती है। यह जनमानस की अज्ञानता, रुढ़िवादिता अथवा धर्म-भीरुता का उदाहरण नहीं है अपितु पाषाण में प्रतिष्ठित देवात्मा की आराधना तथा कला अवशेषों की मूल्यांकन एवं अपनी संस्कृति के प्रति जागरुकता का समग्र रुप भी है।

बिलासपुर जिले में जैन धर्म के कलाकृतियों के प्रारंभिक उदाहरण मल्हार से प्राप्त हुये हैं। सोमवंश के शासकों के काल लगभग 7-8वीं सदी ई. में मल्हार, धार्मिक केन्द्र के रुप में विकसित हो चुका था। इस काल की अधिकांश प्रतिमाएँ भूरा-बलुआ प्रस्तर से निर्मित हैं। कलचुरियों के काल में जैन धर्म की लोक-व्यापी स्वरुप देखने को मिलता है। 10-11वीं सदी ई. में जैन कलाकृतियों के प्रचुर अवशेषों से यह भी आभसित होता है कि शैव एवं वैष्णव धर्म के आचार-विचार तथा प्रतिमा-शास्त्रीय मान्य सिद्धांत जैन स्थापत्य कला में भी अनेक अंशों में ग्राह्य हो चुके थे। प्रतिमा विज्ञान में यह तीर्थंकर आदिनाथ, अम्बिका, गोमुख यक्ष, मातृकाओं तथा नवग्रहों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से विशेष रुप से स्पष्ट होता है।

जिला पुरातत्व संग्रहालय, बिलासपुर में बिलासपुर क्षेत्र की जैन प्रतिमाओं का अच्छा संग्रह है। इन प्रतिमाओं का संक्षिप्त परिचय, संग्रहालयों में पुरावशेषों के अभिलेखीय संधारण पद्धति से प्रस्तुत है।

(1) तीर्थंकर

प्राप्ति स्थल : रतनपुर — सामग्री : ग्रेनाइट प्रस्तर

माप . 64X42X20 से.मी. — काल 11वीं सदी ई.

प्रतिमा का अधिष्ठान भाग खण्डित होने के कारण तीर्थंकर का अभिज्ञान संभव नहीं है। यहाँ तीर्थंकर को पद्मासन में ध्यान मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उनके शिरोभाग के पीछे वृत्ताकार मणि-मुक्ता जड़ित प्रभामण्डल है तथा ऊपरी भाग में त्रिशिखर छत्र अभिषेकरत गज-युक्त मालाधारी विद्याधर-युगल प्रदर्शित हैं।

तीर्थंकर के शीर्ष पर उष्णीष बद्ध बुद्बुदाकार केश हैं। कंधों तक स्पर्श करते हुए लंबे कान, वक्ष पर श्री-वत्स चिन्ह तथा गले पर आवर्त रेखाएँ द्रष्टव्य हैं। उनकी मुख-मुद्रा अत्यन्त सौम्य है। मध्य भाग पर दोनों ओर चंवरधारी इन्द्र द्विभंग में प्रदर्शित है। तीर्थंकर प्रतिमा की दोनो हथेलियां एवं अधिष्ठान पर, लांछन भग्न है। (चित्र क्र - 10)

(2) तीर्थंकर आदिनाथ

प्राप्ति स्थल	रतनपुर	सामग्री	ग्रेनाइट प्रस्तर
माप	50X48X18 से मी	काल	11वीं सदी ई

तीर्थंकर आदिनाथ प्रतिमा का उर्ध्वभाग अत्यंत कलात्मक है। उनके शिरोभाग पर जटा-जूट बद्ध केशराशि का अंकन है जिसकी लटें स्कंध पर्यन्त विस्तीर्ण हैं। शिरोभाग के पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है, जिसके ऊपर त्रिशिखर छत्र, दुन्दुभिवादक, अभिषेकरत गज-युग्म तथा बाह्य पार्श्व मे मालाधारी विद्याधारी-युगल द्रष्टव्य हैं।

आदिनाथ के समीप दोनों ओर स्थित चवरधारी इन्द्र अवशिष्ट हैं। इस प्रतिमा का वक्ष भाग खंडित है तथा मध्यभाग अनुपलब्ध है। (चित्र क्र 11)

(3) तीर्थंकर आदिनाथ

प्राप्ति स्थल	रतनपुर	सामग्री	ग्रेनाइट प्रस्तर
माप · 75X51X24 से मी		काल	11वीं सदी ई

तीर्थंकर आदिनाथ पद्मासन में ध्यानमग्न अवस्थित हैं। उनके मुख पर ध्यान के भाव है। शिरोभाग पर जटा भारयुक्त गुंफित केश हैं तथा स्कंध पर्यन्त विस्तीर्ण हैं। शिरोभाग के पीछे वृत्ताकार अलंकृत प्रभामण्डल अवशिष्ट हैं तथा अन्य प्रतीक भग्न हैं। वक्ष पर श्रीवत्स लांछन हैं। उनके दायें ओर चवरधारी इन्द्र स्थित है।

सिंहासन के उत्कीर्ण पटल के मध्य प्रसन्न मुख बलिष्ठ नंदी द्रष्टव्य है जिसके नीचे धर्मचक्र एवं उपासना करते प्रतिष्ठापक दम्पत्ति तथा अन्य आराधक अंकित हैं। सिंहासन के दोनों ओर सिंह बैठे हुये द्रष्टव्य हैं। (चित्र क्र 12)

(4) तीर्थंकर मल्लिनाथ

प्राप्ति स्थल	रतनपुर	सामग्री	ग्रेनाइट प्रस्तर
माप	97X26X19 से मी	काल	11वीं सदी ई

तीर्थंकर मल्लिनाथ की स्थानक प्रतिमा ध्यानस्थ प्रदर्शित है। उनके शिरोभाग पर उष्णीषबद्ध बुद्बुदाकार केश हैं। उनके कर्ण तथा भुजाएं अत्याधिक बड़े हैं जो क्रमशः कंधो तथा घुटनों तक विस्तृत हैं। वक्ष पर श्रीवत्स लांछन द्रष्टव्य है।

तीर्थंकर मल्लिनाथ के शिरोभाग के पीछे वृत्ताकार, अलंकृत प्रभामण्डल है तथा शिखर छत्र, दुन्दुभिवादक अभिषेक करते गज-युग्म, मालाधारी विद्याधर आदि दृष्टव्य हैं। नीचे पैरों के समीप चंवरधारी इन्द्र एवं शासन यक्ष-यक्षिणी कुबेर और अपराजिता लघु रुप में द्रष्टव्य हैं। अधिष्ठान भाग पर अंकित उत्कीर्ण पटल पर तीर्थंकर मल्लिनाथ का लांछन, 'कलश' चिन्ह का अंकन है। सिंहासन पर दोनों ओर सिंह प्रदर्शित हैं। (चित्र क्र. 13)

(5) तीर्थंकर

प्राप्ति स्थल : रतनपुर	सामग्री : ग्रेनाइट प्रस्तर
माप : 70X20X12 से.मी.	काल : 11वीं सदी ई.

तीर्थंकर समभाग स्थानक मुद्रा में खड़े हैं। उनके मस्तक पर बुद्बुदाकार उष्णीषबद्ध केश हैं। मुख पर ध्यान के भाव हैं तथा नेत्र अर्धनिमिलित हैं। उनके कान कंधों तक विस्तीर्ण हैं तथा भुजाएं घुटनों को स्पर्श कर रही हैं। वक्ष पर मध्य में श्रीवत्स लांछन हैं।

तीर्थंकर के शिरोभाग के पीछे वृत्ताकार प्रभामण्डल है तथा दुन्दुभिवादक, त्रिशिखर छत्र, अभिषेकरत गज-युग्म एवं मालाधारी विद्याधर आदि पारंपरिक अलंकरण हैं। नीचे पैरों के समीप चंवरधारी इन्द्र अवशिष्ट हैं। (चित्र क्र. 14)

(6) गोमेद-अंबिका

प्राप्ति स्थल : दारसागर	सामग्री : बलुआ पाषाण
माप : 85X58X18 से.मी.	काल : 11वीं सदी ई.

आम्र वृक्ष के नीचे गोमेद तथा अंबिका अर्ध पर्यंकासन में बैठे हुए प्रदर्शित हैं। गोमेद का मुख तथा दाहिना हाथ भग्न है। उनके बायें हाथ में अस्पष्ट वस्तु है। अंबिका के शिरोभाग पर किरीट मुकुट है तथा चक्राकार कुंडल, मुक्ताहार, स्तनसूत्र, भुजबंध, कटिसूत्र एवं नुपुर पहने हुई हैं। उनके दायें हाथ में बीज पूरक है तथा बायां हाथ भग्न है।

अधिष्ठान भाग पर मध्य में पद्मासन आराधक अनुचरों सहित द्रष्टव्य हैं। इस प्रतिमा में शिशु रुपायित नहीं हैं। (चित्र क्र. 15)

(7) बाहुबली

प्राप्ति स्थल : रतनपुर	सामग्री : भूरा बलुआ प्रस्तर
माप : 80X23X18 से.मी.	काल : 11वीं सदी ई.

बाहुबली की यह प्रतिमा रतनपुर के पुलिया में जड़ी हुई थी, जिसे वहाँ से निकाले जाने

के पश्चात् संग्रहालय में लाया गया है। यह छत्तीसगढ़ में ज्ञात एकमात्र बाहुबली की प्रतिमा है। जैन पुराणों में बाहुबली के द्वारा मोक्ष प्राप्ति के लिए अत्यंत कठिन तपश्चर्या की कथा है जिसमें उल्लेख है कि उनके निश्चल देह पर लता गुल्म विकसित-पल्लवित हो गये थे। बाहुबली की यह तपस्या जैन धर्म की एक अत्यंत प्रभावोत्पादक कथा है। संग्रहालय की इस प्रतिमा में उपरोक्त तपश्चर्या का शिल्पीय रूपांकन है। बाहुबली समपाद स्थानक मुद्रा में स्थित रहकर तप कर रहे हैं। उनके मुख पर असीम ध्यान के भाव हैं। शिरोभाग के पीछे वृत्ताकार प्रभामण्डल है। उनके जांघों के ऊपर लता गुल्म स्वाभाविक रुप से लिपटे हुए हैं तथा छिपकली सदृश्य एक जन्तु भी अंकित है। अंत में पैरों के समीप दोनों ओर चंवरधारी देव दृष्टव्य हैं। सिंहासन पीठिका पर मध्य में उत्कीर्ण पटल, धर्म चक्र तथा सिंह दृष्टव्य हैं। (चित्र क्र. 16)

उपरोक्त उदाहरणों से यह सिद्ध है कि बिलासपुर जिले से ही नहीं अपितु संपूर्ण छत्तीसगढ़ क्षेत्र में जैन धर्म के पर्याप्त अनुयायी थे तथा कुछ अंशों में इन्हें राज्याश्रय भी प्राप्त था। इन प्राचीन प्रतिमाओं के अध्ययन से हमें तत्कालीन धार्मिक सद्भाव, कलात्मक प्रवृत्तियाँ, लोक-व्यवहार तथा शिल्पीय प्रवृत्तियों की जानकारी भी प्राप्त होती है। जैन प्रतिमा विज्ञान का अध्ययन तथा उपलब्ध कलाकृतियों के सूक्ष्म अवलोकन से शास्त्रीय वर्णन तथा शिल्पीय कर्म-कौशल के मध्य एक सुदृढ़ ज्ञान-विज्ञान की प्रचलित परम्परा का संवहन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

नागेश्वर जैन मंदिर, नगपुरा

नरेश कुमार पाठक

दुर्ग जिले में राजनांदगाँव मार्ग पर शिवनाथ नदी के दूसरे तट पर 16 कि.मी. की दूरी पर नगपुरा ग्राम स्थित है। गाँव के बीच में एक नवीन कमरानुमा मढ़िया बनी है, जिसमें बीच में पीपल के पेड़ पर चबूतरा बना है, उसमें कुछ प्रतिमा स्थापित है, जिसकी स्थानीय लोगों द्वारा पूजा की जाती है। इस मंदिर में सबसे अच्छी हालत में सुन्दर प्रतिमा तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है, पुरातत्वविद् श्री वेद प्रकाश नगायच [1] का कथन है, कि सम्भवतः इसके ऊपर नागफण होने के कारण ही ग्रामवासी इसे नागदेव मंदिर कहते हैं। यह भी सम्भव है कि, कि इस प्रतिमा के कारण ग्राम का नाम भी नगपुरा हुआ है। दुर्ग जिला गजेटियर [2] में इसे कलचुरि कालीन जैन मंदिर के रुप में उल्लिखित किया गया है। मंदिर में प्राप्त पुरावशेषों से स्पष्ट होता है, कि यहाँ एक जैन मंदिर ध्वस्त हो जाने के बाद में श्रद्धालुओं ने इसी के ऊपर नवीन मंदिर का निर्माण करवा दिया। यहाँ मंदिर के दोनों द्वार-शाखाएँ रखी है। जिन पर नदी देवियों का अंकन किया गया है। देवी एक हाथ में कलश लिये हुये है, एवं मुकुट, हार, केयूर, वलय, मेखला व नुपुर पहने हुए है। नदी देवियों के अतिरिक्त चतुर्भजी आसनस्थ गणेश, सर्पफण युक्त नाग प्रतिमा, पैर युक्त प्रतिमा पादपीठ रखे हुए है। यहाँ पर जैन प्रतिमाओं की संख्या अधिक है, जिनका विवरण निम्नानुसार है :-

पार्श्वनाथ :- तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ पद्मासन में शेष आसन पर ध्यानस्थ बैठे हैं। अर्ध उन्मीलित नेत्र, सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्णचाप, कंधे तक फैली हुई जटायें है। वक्ष पर श्री-वत्स चिन्ह का सानुपातिक अंकन हुआ है। पादपीठ से सर्प का घुमावदार अंकन तीर्थंकर के पीछे होता हुआ सिर के ऊपर सप्तफण की मौलि बनी हुई है। वितान में विद्याधर, गन्धर्व, अभिषेक करते हुए गजराज, त्रिछत्र, दुन्दभिक का अंकन है। दोनों हाथ की हथेलियाँ एक-दूसरे पर रखी है और पैर के तलुओं से टिकी हुई हैं। ध्यान मे लीन इस प्रतिमा का काल लगभग 7-8 वीं शती ईस्वी की प्रतीत होती है। सम्पूर्ण प्रतिमा काफी आकर्षक है। प्रतिमा का आकार 80X60X30 सेन्टीमीटर है।

तीर्थंकर - यहां से दो लांछन विहिन तीर्थंकर प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। प्रथम प्रतिमा, तीर्थंकर प्रतिमा का अर्धभाग है, जिसमें तीर्थंकर कुन्तलित केश, लम्बे कर्णचाप से अलंकृत हैं। वितान में त्रिछत्र, दुन्दुभिक अभिषेक करते हुए गजराज, ऊपर पद्मासन में तीर्थंकर बैठे हुए हैं, जिसके ऊपर मालाधारी विद्याधर एवं पीछे प्रभामण्डल हैं, दोनों पार्श्व में एक-एक कायोत्सर्ग मुद्रा में जिन प्रतिमा का अंकन है। प्रतिमा का आकार 4.2 X 3.0 X 0.7 से.मी. है। दूसरी प्रतिमा पद्मासन

में बैठे हुए तीर्थंकर की है। प्रतिमा का आकार 40X25X15 से.मी. है। कालक्रम की दृष्टि से दोनों प्रतिमाएँ 7-8 वी. शती ईस्वी की प्रतीत होती हैं।

तीर्थंकर प्रतिमा वितान - यहां से दो तीर्थंकर प्रतिमा वितान प्राप्त हुए हैं। प्रथम तीर्थंकर प्रतिमाओं के वितान है, जिस पर छत्र, गजराज, विद्याधर युगल, प्रभामण्डल, आंशिक रुप से सुरक्षित हैं। ऊपर स्तम्भ युक्त गवाक्ष के अन्दर पद्मासन में तीन कायोत्सर्ग में प्रतिमाएँ है। मध्य के तीर्थंकर के नीचे पांच कायोत्सर्ग में प्रतिमा खड़ी है। दायें ओर के तीर्थंकर के नीचे दो पद्मासन में, तीन कायोत्सर्ग में प्रतिमा बैठी है। मध्य के तीर्थंकर के नीचे पांच कायोत्सर्ग में जिन प्रतिमा खड़ी है। दायें ओर के तीर्थंकर के नीचे दो पद्मासन में, एक चार कायोत्सर्ग में जिन प्रतिमा अंकित है। बायी ओर तीर्थंकर प्रतिमा के नीचे एक पद्मासन में एवं दो कायोत्सर्ग में तीर्थंकर प्रतिमा बैठी है, प्रतिमा का आकार 34X32X7 से. मी. है। द्वितीय तीर्थंकर प्रतिमा वितान का बायां भाग है, इस स्तम्भ युक्त गवाक्ष के अन्दर पद्मासन में तीर्थंकर बैठे हैं। तीर्थंकर के बायें ओर एक पद्मासन में एवं दो कायोत्सर्ग में जिन प्रतिमा बैठी है। इसके अतिरिक्त इस खण्ड पर विभिन्न प्रकार की लता बल्लरियों का आलेखन है। तिथिक्रम की दृष्टि से दोनों प्रतिमाएँ 7-8वीं शती ईस्वी की प्रतीत होती है।[3]

यद्यपि यह मंदिर अपने प्राचीन स्वरुप में नहीं है, परन्तु यह दुर्ग जिले के जैन कला के विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. वेद प्रकाश नगायच, नागदेव मंदिर नगपुरा पर निरीक्षण प्रतिवेदन, दिनाँक 14-10-1987
2. दुर्ग डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ. 182, राजकुमार शर्मा, मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ, भोपाल, 1974, पृ. 283 क्र. 1234
3. नरेश कुमार पाठक, नागदेव जैन मंदिर नगपुरा, अनेकांत, वर्ष 45, 3 जुलाई-सितंबर 1992.

बस्तर की जैन प्रतिमाएँ

नरेश कुमार पाठक

बस्तर सम्भाग छत्तीसगढ़ के दक्षिण में 17.46' से 20.34' उत्तरी अक्षांश और 80 .15' से 82 1' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। इसके पूर्व में उड़ीसा, पश्चिम में महाराष्ट्र, दक्षिण में आन्ध्र प्रदेश और उत्तर में रायपुर और दुर्ग जिलों की सीमायें स्पर्श करती हैं। इसका कुल क्षेत्रफल 39171 वर्ग कि.मी. है। इस जिले का गठन सन् 1948 में रियासतों के विलीकरण के समय किया गया था। इसे 20 मार्च 1981 को सम्भाग का दर्जा दिया गया एवं 25 मई 1998 को इस सम्भाग के जगदलपुर (बस्तर) जिले में से कांकेर एवं दन्तेवाड़ा दो नवीन जिले बनाकर तीन जिलों में विभक्त कर दिया गया।

बस्तर अनादिकाल से ही मानव का क्रीड़ा काल रहा है, यहाँ पूर्व पाषाण काल, मध्य पाषाण काल, उत्तर पाषाण काल एवं नव पाषाण काल के उपकरण प्राप्त हुए हैं। वैदिक युग की सामग्री का बस्तर में अभाव है, वाल्मिकी रामायण में इसे दण्डकारण्य क्षेत्र माना गया है। महाभारत एवं पुराणों में इस क्षेत्र की गोदावरी और सबरी नदियों का उल्लेख है। इस क्षेत्र पर मौर्य सम्राट अशोक, महामेघ वंश के प्रतापी राजा खारवेल एवं सातवाहन शासक गौतमीपुत्र शातकर्णी के प्रभाव रहा है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में इस क्षेत्र को महाकान्तर के नाम से उल्लखित किया है, तथा यहाँ का राजा व्याघ्रराज था। गुप्तों के समकालीन नलवंशीय शासकों का यहाँ आधिपत्य रहा है। नलों के पश्चात् बस्तर में छिन्दक नागवंशीय राजाओं का राज्य स्थापित हुआ और यह क्षेत्र चक्रकोट कहलाया। इन्हीं के समकालीन कांकेर (वर्तमान कांकेर) प्रदेश पर सोमवंशीय शासक राज्य करते रहे थे। इस वंश के अनेक शासकों ने यहाँ राज्य किया। इस प्रकार छिन्दक नाग एवं सोमवंशी शासकों का प्रभुत्व इस क्षेत्र पर 14वीं शताब्दी तक रहा।[1]

बस्तर में नाग अभिलेखों में 'जिणग्राम' की चर्चा से यह संकेत मिलता है, कि मध्ययुग में जैन-साधु समूहबद्ध होकर यहाँ निवास करते थे। ये जैन-साधु दक्षिणपंथी तंत्र-साधक थे तथा इनके चैत्यों में गुहा-साधना का प्रयोग चलता था।[2] बस्तर सम्भाग में मुझे 14 जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं जिनका विवरण इस प्रकार है -

आदिनाथ - प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की बस्तर सम्भाग से तीन प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिनमें दो पद्मासन में एवं एक कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पद्मासन मुद्रा में निर्मित प्रथम मूर्ति कुरुसपाल गांव के बुद्ध पुजारी के घर में रखी है। तीर्थंकर आदिनाथ पद्मासन की ध्यानमुद्रा में अंकित है, सिर पर कुन्तलित केश, पीछे प्रभामण्डल, कर्णचाप, कंधे तक केश फैले हैं। वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह का अंकन है। वितान में त्रिछत्र, दुन्दभिक, अभिषेक करते हुए गजराज, दोनों ओर चवरधारी

परिचारक खड़े हैं। उनके नीचे एक-एक जिन प्रतिमा खड़ी है। आसन पर तीर्थंकर आदिनाथ का ध्वज लांछन वृषभ अंकित है। नीचे विपरित दिशा में मुख किये सिंह एवं मध्य में चक्र है। दायें गोमुख यक्ष एवं बायें यक्षी चक्रेश्वरी का अंकन है। कृष्ण पाषाण पर निर्मित 11 वीं शती ईस्वी की प्रतिमा का आकार 65X20 से. मी. है। (चित्र क्र. - 17)

द्वितीय प्रतिमा रेरावड़ में आधुनिक देव मंदिर में स्थापित है। पद्मासन में प्रदर्शित द्विभुजी आदिनाथ की प्रतिमा सिंहासन पर आसीन ध्यान मुद्रा में अंकित है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह है। अर्न्धोन्मीलित नेत्र, घुंघराले केश, लम्बकर्ण इसकी विशेषता है। पीठासन पर बैठा हुआ वृषभ अंकित है। दोनों पार्श्व में क्रमश: भरत और बाहुबली, आसन के नीचे सिंहों के मध्य चक्र प्रदर्शित है, ऊपर त्रिछत्र पर बैठी गजों से अभिषिक्त जिन आकृति खण्डित है। तिथिक्रम की दृष्टि से 11 वीं शती ईस्वी के अन्तिम चरण की प्रतीत होती है। [1]

कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित बनियागांव से प्राप्त तीर्थंकर आदिनाथ के सिर कुन्तलित केश, कर्णचाप, वक्ष पर श्रीवत्स प्रदर्शित किये हैं। वितान में मालाधारी विद्याधारी पार्श्व में दोनों ओर एक-एक चवरधारी अंकित हैं। पादपीठ पर ऋषभ का अंकन है। नीचे मध्य में चक्र दोनों ओर विपरित दिशा में मुख किये सिंहों का अंकन है। दायें पार्श्व में यक्ष गोमुख, बायीं ओर यक्षी चक्रेश्वरी अंकित है। कृष्ण पाषाण पर निर्मित 12 वीं शती ईस्वी की मूर्ति का आकार 58X22 से.मी. है।

नेमिनाथ - बनिया गांव से प्राप्त बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित है। सिर पर कुन्तलित केशराशि, कर्णचाप, वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह है। वितान में मालाधारी विद्याधर, त्रिछत्र, दुन्दभिक, अभिषेक करते गजराज एवं ऊपर पद्मासन में जिन बैठे हुए हैं। पादपीठ पर दोनों ओर चावरधारी एवं नीचे नेमिनाथ का ध्वज लांछन शंख अंकित है। नीचे मध्य में चक्र के दोनों ओर विपरित दिशा में मुख किये सिंह का आलेखन है। दायें पार्श्व में यक्ष गोमेद बायीं ओर यक्षी अंबिका अंकित है। लगभग 12वीं शती ईस्वी की कृष्ण पाषाण पर अंकित प्रतिमा का आकार 83X22 से.मी. है।

पार्श्वनाथ - तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की बस्तर सम्भाग से दो प्रतिमा मिली है। प्रथम गढ़ बोदरा से प्राप्त प्रतिमा में तीर्थंकर पद्मासन की ध्यान मुद्रा में बैठे हुए हैं। लम्बे कर्णचाप सिर पर कुन्तलित केश एवं ऊपर सप्टफण नाग मौलि का आलेखन है। दायें-बायें चवरधारी धरणेन्द्र व अतिराज अंकित है। नीचे उपासक और ऊपर विद्याधर तथा त्रिछत्र उकेरे गये हैं। तिथिक्रम की दृष्टि से मूर्ति ग्यारहवीं शती ईस्वी की प्रतीत होती है। [4] (चित्र क्र. - 18)

कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की दूसरी प्रतिमा बारसूर के चन्द्रादित्येश्वर (देवरली) मंदिर के संग्रह में है। तीर्थंकर सिर के ऊपर सप्तफण नाग मौलि, कुन्तलित केश, कर्णचाप, अजानबाहु एवं श्रीवत्स का अंकन है। देवता के पीछे नीचे से ऊपर तक सर्प कुण्डलियाँ

प्रदर्शित हैं। पादपीठ पर मध्य में चक्र दोनों पार्श्व में सिंह अंकित है। दायें पार्श्व में अंजली-हस्तमुद्रा में हाथ जोड़े सेवक बैठा है। तीर्थंकर के पार्श्व में दायें धरणेन्द्र बायें चंवरधारी अतिराज अंकित हैं।' वितान में त्रिछत्र, दुन्दुभिक मालाधारी विद्याधर एवं दो पुष्पों का आलेखन है। बलुआ पत्थर पर निर्मित ग्यारहवीं शती ईस्वीं की प्रतिमा का आकार 118X58 से.मी. है।

तीर्थंकर - यह प्रतिमा सर्वेटसन् बिल्डिंग जगदलपुर के समीप निर्मित हनुमान गढ़ी मंदिर के सामने स्थापित है यहाँ तीर्थंकर पद्मासन की ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हैं। सिर व बांयां परिचारक टूटा है। दायें ओर का परिचारक खड़ा है। पादपीठ पर मध्य में चक्र, दोनों पार्श्व में सामने मुख किये सिंह बैठे हुए हैं। उनके पार्श्व में अंजनी मुद्रा में हाथ जोड़े सेवक अंकित हैं, जो केश, कुण्डल, बलय, मेखला आदि आभूषणों से अंकित है। सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित यह प्रतिमा लगभग 12वीं शती ईस्वी की है।' डा. विवेकदत्त झा ने इस प्रतिमा के आसन के नीचे दो सिंहों के मध्य निर्मित धर्मचक्र के आधार पर प्रतिमा को ऋषभनाथ की माना है।' इस प्रतिमा में लांछन सुरक्षित नहीं है अतः प्रतिमा का अभिज्ञान निश्चित रुप से किया जाना संभव नहीं है।

तीर्थंकर प्रतिमा वितान - बालाजी मंदिर जगदलपुर के प्रवेश-द्वार के ऊपर खण्डित तीर्थंकर प्रतिमा का वितान जुड़ा हुआ है। पट्ट में तीर्थंकर के मस्तक के ऊपर उकेरा जाने वाला त्रिछत्र गज आकृतियाँ एवं पद्मासन में आसीन जिन की आकृति शेष है। तिथिक्रम की दृष्टि से प्रतिमा ग्यारहवीं शती ईस्वी की प्रतीत होती हैं।

अम्बिका - बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका की बस्तर सम्भाग से पाँच प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। जिनमें चार आसन एवं एक स्थानक है। प्रथम प्रतिमा, माडपाल के भैरव मंदिर से मिली है, इसमें जैन यक्षी अम्बिका अपने वाहन सिंह पर बैठी हुई है। यक्षी की गोद में दायीं ओर लघु पुत्र प्रियंकर, बांयी ओर जेष्ठपुत्र शुभंकर खड़ा हुआ है। देवी कुण्डल, हार, बलय आदि आभूषण धारण किये है। बलुआ पत्थर पर निर्मित 15X13X6 से.मी. आकार की प्रतिमा 11-12 वीं शती ईस्वी की प्रतीत होती हैं।

बारसूर के चन्द्रादित्येश्वर (देवरली) मंदिर के संग्रह में सुरक्षित यक्षी अम्बिका सव्य ललितासन में बैठी हुई है। दायीं ओर ऊपरी भुजा भग्न है। शेष तीन भुजाओं में क्रमशः से गोलवस्तु आम्रगुच्छ एवं बायीं गोद में लिये लघु पुत्र प्रियंकर को सहारा दिये हुए है। यक्षी चक्रकुण्डल, ग्रैवेयक, एकावली हार, केयूर, बलय, मेखला व नूपुर पहने हुए है। प्रतिमा का आकार 39X28 से.मी. है। तिथिक्रम की दृष्टि से मूर्ति लगभग 11-12वीं शती ईस्वी की प्रतीत होती है।

बारसूर के चन्द्रादित्येश्वर (देवरली) मंदिर के संग्रह में इसी कालखण्ड की एक अन्य दोभुजी यक्षी अम्बिका दायीं भुजा में आम्रगुच्छ लिये हैं। बायीं भुजा से लघु पुत्र प्रियंकर को सहारा दिये है। प्रियंकर की प्रतिमा टूट चुकी है। बांयी ओर जेष्ठ पुत्र शुभंकर खड़ा हुआ है। यक्षी का

सिर भग्न है। प्रतिमा पारम्परिक आभूषणों से युक्त है। प्रतिमा का आकार 31X26 से.मी. है।

कांकेर के राजापारा की मावली गुड़ी में स्थापित चतुर्भुजी अम्बिका की प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में प्रदर्शित है। उनकी दायी नीचे की भुजा में आम्रफलों का गुच्छा, ऊपरी भुजा में अंकुश है। बायीं ऊपरी भुजा में पाश तथा नीचे की भुजा से लघुपुत्र प्रियंकर को सहारा दिये हुये है। 10-11 वीं शती ईस्वी की इस प्रतिमा का साम्य नेमिनाथ चरित्र के विवरण से है।[8]

बारसूर के चन्द्रादित्येश्वर (देवरली) मंदिर में सुरक्षित यक्षी अम्बिका समभंग स्थानक में खड़ी है। दायीं भुजा में आम्र-गुच्छ एवं बायीं भुजा अपने लघुपुत्र शुभंकर पर रखे हुए है। पादपीठ पर एक अन्य प्रतिमा सम्भवत ज्येष्ठ पुत्र शुभंकर की प्रतीत होती है। यक्षी चक्रकुण्डल, ग्रैवेयक व उत्तरीय धारण किये है। लगभग 11-12 वीं शती ईस्वी की प्रतिमा का आकार 65X28 से.मी है।

पद्मावती - गुढियारी मंदिर केशरपाल से प्राप्त द्विभंग मुद्रा में अंकित तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती की भुजाओं में दक्षिणाध क्रम से भूमि स्पर्श मुद्रा, दण्ड, पताका, पाश्र्व एवं शांत रुप का चित्रण है। सिर के ऊपर सर्पफण, नागमौलि है, देवी करण्ड मुकुट, चक्रकुण्डल, ग्रैवेयक वक्षस्थल तक फैली हारावली केयूर वलय, मेखला एवं नुपुर पहने हुए है, बांयी ओर उनके वाहन कुक्कुट का अंकन है। बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा लगभग 12-13वीं शती ईस्वी की प्रतीत होती है।

उपरोक्त प्रतिमाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि बस्तर सम्भाग से जैन प्रतिमा बहुत कम मात्रा में प्राप्त हुई है फिर भी बस्तर क्षेत्र में जैन धर्म एवं कला के विकास की दृष्टि से इन्हें महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

संदर्भ एवं टिप्पणियां

1 नरेश कुमार पाठक, "बस्तर इतिहास एवं पुरातत्व", **"प्रगति पथ पर मध्यप्रदेश"**, रायपुर सितम्बर-अक्टूबर 1991 पृ 43-33
2 हीरालाल शुक्ल, **आदिवासी समान्तवाद (बस्तर की मड़िया जनजाति की उत्पत्ति का नागमूलक सिद्धांत)** दिल्ली, 1987, पृ 127
3 विवेकदत्त झा, **बस्तर का मूर्ति शिल्प**, भोपाल, 1988, पृ 127
4 विवेक दत्त झा, **पूर्व उद्धृत**, पृ 112
5 विवेक दत्त झा, **पूर्व उद्धृत**, पृ 112
6 नरेश कुमार पाठक, "हनुमानगढ़ी मंदिर, जगदलपुर की प्राचीन प्रतिमायें", **बस्तर टाइम्स** 27 मार्च से 9 अप्रेल, संयुक्तांक पृ 2
7 विवेकदत्त झा, **पूर्व उद्धृत**, पृ 111
8. विवेकदत्त झा, **पूर्व उद्धृत**, पृ 112

राजनांदगाँव जिले की जैन प्रतिमाएँ

डॉ. आर. एन. विश्वकर्मा

छत्तीसगढ़ में प्राचीनकाल में राज्य करने वाले शासकों की धार्मिक उदारता के परिणामस्वरूप सभी धर्मों का पल्लवन समान रुप से हुआ, जिसकी पुष्टि हमें मल्हार, सिरपुर, धनपुर, रतनपुर, आरंग, राजिम, डोंगरगढ़, कीरीतवास, नगपुरा आदि स्थानों से प्राप्त जैन प्रतिमाओं से होती हैं। तत्कालीन समाज में अनेक जैन कर्मकाण्डों एवं पर्वों के प्रचलन रहा होगा। राजनांदगाँव जिला छत्तीसगढ़ के दक्षिण-पश्चिम भाग में स्थित है। इस जिले में भी जैन-धर्म का प्रचार-प्रसार पर्याप्त मात्रा में था। यही कारण है कि जिले के अनेक स्थानों से कतिपय जैन मूर्तियां प्राप्त होती हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है -

कवर्धा - रायपुर-जबलपुर राजमार्ग पर स्थित पूर्व देशी रियासत कवर्धा वर्तमान में नवगठित जिले का मुख्यालय है। कवर्धा के राजमहल में इस क्षेत्र की विविध मूर्तियां संगृहीत है। इस संग्रह में जैन तीर्थंकर की भी एक प्रतिमा है। कार्योत्सर्ग मुद्रा में निर्मित इस प्रतिमा के शिरोभाग में छत्रनुमा स्तूप का अंकन है। वक्ष-स्थल चौड़ा एवं कटि-प्रदेश अपेक्षाकृत पतला है। प्रतिमा के नेत्र अर्द्ध निमीलित हैं। शरीर रचना सुडौल है। पार्श्व-भाग में उपासक मूर्तियाँ एवं उर्ध्व भाग में मालाधारी गन्धर्वों का अंकन है। लगभग 12वीं शती की यह प्रतिमा भूरे रंग के चिकने प्रस्तर फलक में निर्मित है, जिसकी परिमाप 3 फुट 6 इंच लम्बा एवं 1 फुट 6 इंच चौड़ा है।

कवर्धा के जैन मंदिर से प्राचीन निर्मित अष्ट-धातु की तीर्थंकर सदृश्य एक प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। यह 3 फुट लम्बी एवं 2 फुट चौड़ी है। सिंहासन पर पद्मासन ध्यान मुद्रा में अंकित प्रतिमा की देहयष्टि सुडौल है। उभरे हुए वक्ष-स्थल पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है। सिर मुण्डित है, जिसके पीछे आरेदार प्रभा-मण्डल दिखाई देता है। प्रतिमा के उर्ध्वभाग पर दोनों ओर गज घट से जलाभिषेक कर रहे हैं। अधोभाग में दोनों ओर पद्मासन की स्थिति में दो यति तथा उनके पार्श्व में उपासक दम्पति अंकित हैं। सबसे नीचे भाग में यक्ष सदृश्य आकृतियां दृष्टव्य हैं। पाद भाग में मृदंग वादन करते हुए दो पुरुषाकृतियाँ बनी हैं। यह प्रतिमा इस क्षेत्र की एकमात्र धातु निर्मित जैन प्रतिमा कही जा सकती है। [1]

कंकाली टीला - यह स्थान कवर्धा तहसीलान्तर्गत बोड़ला से 15 कि.मी. पूर्व की ओर एवं मुंगेली तहसील (बिलासपुर) के सीमांत पर हांफ नदी के दाहिने तट पर स्थित है। सर्वप्रथम कनिंघम महोदय [1] ने इस टीले का उल्लेख अपनी रिपोर्ट में किया है। यहाँ का टीला चारों तरफ परिखा से परिवृत्त है। इस टीले पर कभी अनेक मूर्तियां भग्नावस्थआ में बिखरी पड़ी थीं किन्तु वर्तनाम में मूर्तियां नगण्य हैं। यहीं से जैन तीर्थंकर महावीर की एक प्रतिमा सिंहासन पर पद्मासनस्थ मिली है। दुर्भाग्य से इस प्रतिमा का मात्र अधोभाग ही प्राप्त हो सका है।

कठवा पुलिया (पाटे कोहका) - डोंगरगढ़ परिक्षेत्र में चिचोला से लगभग 5 कि.मी. दूर राजनांदगाँव-नागपुर राष्ट्रीय राजमार्ग क्र. 7 पर स्थित नाले पर एक पुलिया है, जिसे लोग कठवा पुलिया कहते हैं। इस पुलिया के दोनों ओर बाहरी दीवार पर अनेक मूर्तियां जड़ी हैं। ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों के साथ ही अनेक जैन प्रतिमाएं भी लगी हैं। सम्भवतः ये मूर्तियां आस-पास के मंदिरों के अवशेष हैं, जिन्हें पुलिया बनाने के लिए इन्हें संग्रहित कर उपयोग कर लिया गया है। पुलिया निर्माण के समय हाल ही में इन मूर्तियों को निकाल कर जिला पुरातत्व संघ संग्रहालय, राजनांदगाँव में लाया गया है।

घटियारी (कटंगी) - गण्डई-पण्डरिया से लगभग 5 कि.मी. पश्चिम की ओर बिरखा नामक ग्राम के समीप घटियारी नामक स्थान है। इसी स्थान पर स्थित टीले के उत्खनन में एक शिव मंदिर प्राप्त हुआ है। स्थापत्य एवं शिल्पगत लक्षणों के आधार पर ज्ञात होता है कि यह मंदिर 12-13वीं शती ई. का है। मंदिर परिसर से पश्चिम की ओर छोटी-छोटी पहाड़ियों की घाटियाँ दिखायी देती है। संभवतः इसी आधार पर इस स्थान का नाम घटियारी पड़ा होगा।

तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभनाथ) की कार्योत्सर्ग मुद्रा में एक प्रतिमा घटियारी शिव मंदिर के मुखमण्डप में रखी हुई है। यह प्रतिमा 3 x 1.4 के पाषाणखण्ड में निर्मित है। दिगम्बर मूर्ति अपने लटकते हुए बाएं हाथ में पात्र लिये हुए हैं। दाहिना हाथ भग्न है। मस्तक के पीछे प्रभामण्डल के दोनों बाजुओं में विद्याधरों को उत्कीर्ण किया गया है। केश राशि दोनों ओर गिरती हुई दिखाई गई है। वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह दृष्टव्य है। जंघा के उभय पार्श्व में चौरी लिए स्थानक इन्द्र का अंकन है। नीचे पैर के दाएं एवं बांये क्रमशः स्थानक यक्ष एवं यक्षी अवस्थित हैं। प्रतिमा के पादपीठ में सिंहासन पर हस्तियों का अंकन है। इसी के मध्य में तीर्थंकर का लांछन चिन्ह अंकित है। इस तीर्थंकर प्रतिमा की ग्रीवा में दोहरी रेखाएं बनी हैं।

घटियारी शिव मंदिर प्रांगण में जैन प्रतिमाओं की प्राप्ति से प्रतीत होता है कि इस स्थान के आस-पास कोई जैन मंदिर रहा होगा।

पुतली पुलिया (मरकाटोला) - राजनांदगाँव-नागपुर सड़क मार्ग पर ग्राम तेन्दुनाला से चिचोला की ओर लगभग 2 कि. मी. दूर स्थित मकरटोला के पास नाले पर एक सकरी पुलिया है। इस पुलिया के दोनों ओर मूर्तियां लगी होने का कारण इसे पुतली पुलिया कहा जाता है। इस पुलिया में वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदाय की मूर्तियों के साथ ही जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक मूर्ति भी मिली है। संपाद स्थानक इस प्रतिमा के सिर पर कुंचित केश और कानों में तांटक को लटकते हुए दिखाया गया है। पृष्ठ भाग प्रभामण्डल से आलोकित है। शरीर की बनावट में समानुपातिक आंगिक सौष्ठता परिलक्षित होती है। वक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है। सिर के ऊपरी भाग में पार्श्वनाथ प्रतिमा लक्षण के अनुरूप सर्पफण निर्मित है। लगभग 12वीं ई. शती

की यह प्रतिमा भूरे रंग के चिकने प्रस्तर से बनी है। प्रतिमा के पादभाग में उपासक दम्पति की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

बकेला (बोड़ला) - कवर्धा क्षेत्र में पंडरिया से 20 कि.मी. एवं सिली पचराही गांव से 2 कि.मी. उत्तर की ओर हांफ नदी के किनारे स्थित बकेला ग्राम से पार्श्वनाथ की मूर्ति सन् 1987 ई. में प्राप्त हुई थी। अभिलिखित यह मूर्ति सम्प्रति पण्डरिया (बिलासपुर) में नवनिर्मित जैन मंदिर में प्रतिष्ठित कर दी गई है।' पद्मासन पर ध्यान मुद्रा में निर्मित 11वीं शती की यह प्रतिमा 4 फुट लम्बी एवं 2 फुट चौड़ी है। मूर्ति काले रंग के चिकने प्रस्तर से निर्मित है। सिर के ऊपर सर्पफण नाग का आटोप है। लम्बकर्ण दोनों स्कन्धों को स्पर्श कर रहे हैं। वक्षस्थल श्रीवत्स चिन्ह से सुशोभित है। अर्द्ध उन्मीलित नेत्र नासाग्र हैं। प्रतिमा की चौकी के निचले भाग में "देवगन गुरु" अभिलेख 11-12वीं शती ई की देवनागरी लिपि में उत्कीर्ण है।

स्थानीय लोग इस पार्श्वनाथ प्रतिमा को "देवगुरु" के नाम से जानते हैं। अभिलेख में प्रतिमा निर्माण एवं मंदिर में प्रतिष्ठित करने वाले व्यक्ति के पुण्योदय होने का उल्लेख है। नगपुरा (दुर्ग जिला) के पार्श्वनाथ प्रतिमा के सदृश्य यह भी जैन मूर्तियों में अनूठी मानी जाती है।

संग्रहालयों में संगृहीत मूर्तियाँ

राजनांदगाँव जिले में तीन संग्रहालयों की स्थापना की गई है। इन संग्रहालयों में संग्रहित जैन मूर्तियाँ निम्नानुसार है -

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय संग्रहालय की जैन मूर्तियाँ - कला एवं संगीत को समर्पित देश के एकमात्र इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय राजनांदगाँव जिले में खैरागढ़ नगर में स्थित है। इस विश्वविद्यालय के भारतीय कला का इतिहास एवं संस्कृति विभाग के अन्तर्गत स्थापित संग्रहालय में जिले के विभिन्न स्थानों से प्राप्त पुरावशेषों एवं कला-कृतियों का संग्रह किया गया है। संग्रहालय मे न केवल ब्राह्मण धर्म वरन् बौद्ध एवं जैन धर्मों की भी कतिपय मूर्तियाँ संगृहित हैं। संग्रहालय में जैन धर्म की चार प्रतिमाएँ हैं।

धर्मनाथ - आयताकार काले प्रस्तर खण्ड में निर्मित प्रतिमा की परिमाप 1X 21X 66X 40 से.मी. है। तीर्थंकर धर्मनाथ का लांछन वज्र अधिष्ठान में उत्कीर्ण है। धर्मनाथ पद्मासन मुद्रा में एक चौकी पर सिंहासन में बैठे हैं। मुखमुद्रा ध्यानावस्थित है। सिर पर कुंचित केश एवं वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह दृष्टिगोचर है। प्रतिमा के उर्ध्वभाग में तीन छत्रावलियाँ बनी हैं, जिनके दोनों ओर गजों को सूंड उठाए जलाभिषेक करते दिखाया गया है। गजों के मध्य एक ढोल वादक स्थित है। तीर्थंकर के मस्तक के पीछे गोलाकार सादगीपूर्ण प्रभा-मण्डल है। कन्धों के पास दोनों ओर मालाधारी विद्याधरों के नीचे उभय-पार्श्वों में एक-एक तीर्थंकर ध्यानमुद्रा में आसनस्थ हैं। धर्मनाथ के परिकर में चँवरधारी खड़े हैं। प्रतिमा फलक के अधोभाग में क्रमशः एक यक्ष और

उपासकों को अंजलिबद्ध मुद्रा में उकेरा गया है। उपासकों के मध्य एक धर्म-चक्र है, जो अस्पष्ट है। प्रतिमा की मुखमुद्रा क्षरित है।

कीरीतवास (राजनांदगाँव) से प्राप्त धर्मनाथ की इस प्रतिमा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह श्वेताम्बर सम्प्रदाय से संबंधित प्रतिमा है। प्रतिमा के कटिभाग में अधोवस्त्र बंधा हुआ है तथा घुटने के नीचे तक स्पष्ट रुप से दिखाया गया है। इस प्रतिमा से यह भी सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र में दिगम्बर सम्प्रदाय के साथ ही साथ श्वेताम्बर सम्प्रदाय का भी प्रचार-प्रसार था। कला की दृष्टि से यह प्रतिमा 11-12वीं शती ई की प्रतीत होती है। (चित्र क्र. - 19)

आदिनाथ - संग्रहालय में प्रदर्शित आदिनाथ (ऋषभनाथ) की प्रतिमा बोर तालाब (डोंगरगढ़) जिला राजनांदगाँव से प्राप्त है। बलुए प्रस्तर से निर्मित यह प्रतिमा लगभग 60 से.मी. ऊंची है। सिरविहीन आदिनाथ ध्यानस्थ मुद्रा में एक चौकी पर पद्मासन में ध्यानस्थ प्रदर्शित हैं।

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की इस प्रतिमा में केश राशि दोनों कन्धों तक लटकती हुई प्रदर्शित है। अधिष्ठान पर उभय-पार्श्वों में एक-एक लघुकाय उपासक प्रतिमाएँ बनी हैं। कटि में बंधी हुई धोती (अधोवस्त्र) इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि यह प्रतिमा श्वेताम्बर सम्प्रदाय से संबंधित है। बलुए प्रस्तर में निर्मित यह प्रतिमा लगभग 11 वीं शती ई. की है।

धर्मनाथ - कवर्धा राजमहल से प्राप्त काले रंग के प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण 105 से.मी. ऊंची लगभग 13 वीं सदी ई. की जैन तीर्थंकर धर्मनाथ की स्थानक प्रतिमा संग्रहालय में संग्रहित है।

उक्त प्रतिमा जैन धर्म के दिगम्बर संप्रदाय से संबंधित है। प्रतिमा समपाद स्थिति में अंकित है। सिर पर कुंचित केश (स्कन्ध तक गिरते हुए) शीर्ष के पीछे कलात्मक प्रभामण्डल, लम्बकर्ण, गले में महापुरुषों का परिचायक त्रिवल का चिन्ह, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, चेहरे पर आध्यात्मिक शांति का भाव प्रदर्शित है।

प्रतिमा के ऊपरी भाग पर छत्रनुमा आकृति अंकित है, जिसके दोनों गज अभिषेक करते एवं उनके नीचे मालाधारी परिचारक अंकित हैं। परिकर के पाद भाग पर उपासक, उपासिकाएं एवं अनुचर प्रदर्शित किये गये है। (चित्र क्र.- 20)

पार्श्वनाथ - राजनांदगाँव जिले के डोंगरगढ़ से प्राप्त काले प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण 75 से.मी. ऊंची जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा (जो लगभग 13वीं सदी ई. की है) संग्रहालय में संग्रहित है। प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में है। दोनों हाथ की हथलियां एक दूसरे पर पैर के तलुवे पर स्थित है। सिर पर सात फणों का आटोप तथा कानों में ताटंक है। सुडौल शरीर, वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह, शीर्ष के पीछे प्रभामण्डल, अर्धनिमिलित आँखें, गंभीर एवं शांत भाव प्रदर्शित है। प्रतिमा के परिकर के ऊपरी भाग पर छत्रनुमा स्तूप, जिसके दोनों ओर (बांया भाग खण्डित है) गज अभिषेक करते हुए एवं उसके नीचे मालाधारी गंधर्व प्रदर्शित है। परिकर के मध्यभाग में तीर्थंकरों को स्थानक मुद्रा में अंकित किया गया है। प्रतिमा के पादभाग पर सिंहासन प्रदर्शित है। (चित्र क्र. - 21)

तीर्थंकर - राजनांदगाँव जिले से प्राप्त काले प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण जैन तीर्थंकर की प्रतिमा संग्रहालय में संग्रहित है। उक्त जैन प्रतिमा में जैन तीर्थंकर पद्मासन मुद्रा में बैठे हैं। कुंचित केश, शीर्ष के पीछे सादा प्रभामण्डल, कानों में तांटक, गले में त्रिवल का चिन्ह, दोनों हाथ की हथेलियां एक-दूसरे के ऊपर रखी हुई पैरों के तलवे के ऊपर स्थित है। अर्धनिमिलित आँखें चेहरे पर आध्यात्मिक शांति का भाव प्रदर्शित है। प्रतिमा के परिकर के शीर्ष भाग पर छत्रनुमा स्तूप एवं उसके दोनों ओर गजाभिषेक का अंकन है। जैन तीर्थंकर के दोनों ओर मालाधारी गंधर्व व उसके नीचे चँवरधारी अनुचर प्रदर्शित किए गए हैं। प्रतिमा के पादभाग पर अभिलेख अंकित हैं। (चित्र क्र. - 22)

पुरातत्व संग्रहालय राजनांदगाँव - यह संग्रहालय 1990 के दशक में स्थापित किया गया था। यह वर्तमान में कलेक्टरेट के एक बड़े कमरे में मूर्तियां को संगृहित कर बनाया गया है। यहाँ वैष्णव, शैव, शाक्त एवं जैन धर्म की कुछ मूर्तियां का संग्रह है। इस संग्रहालय में जैन तीर्थंकर की एक प्रतिमा भग्न प्रतिमा रखी हुई है। यह बलुए प्रस्तर में निर्मित प्रतिमा है।

मंदिर परिसर संग्रहालय, भोरमदेव - भोरमदेव मंदिर के प्रांगण में आस-पास की मूर्तियां को संग्रहित कर एक स्थल संग्रहालय स्थापित किया गया है। संग्रहालय में एक जैन यक्षी तथा मंदिर प्रांगण में एक सिरविहीन तीर्थंकर प्रतिमा दृष्टव्य है।

यहाँ की जैन यक्षी अम्बिका की अतीव सुन्दर मूर्ति लगभग 2'.6"x 1'.3" प्रस्तर खण्ड में बनी है। त्रिभंग मुद्रा में स्थानक यक्षी का दायाँ हाथ अभयमुद्रा में है, तथा इसी हाथ में आम्रगुच्छ धारण किए हुए है, यक्षी के वाम कटि पर शिशु स्थित है, जिसे अपने बाएँ हाथ से सम्हाले हुई है। ऊपर की ओर अलंकृत प्रभामण्डल तथा आम्रवृक्ष की फल सहित शाखाओं का आच्छादन है।

जैन यक्षी अम्बिका के अधोभाग के पार्श्व में स्थानक उपासक तथा आसनस्थ सिंह का अंकन है। देवी अम्बिका किरीट मुकुट, एकावली हार, चन्द्रहार, स्तनहार आदि धारण किये हुई हैं। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित देवी के मुख पर वात्सल्य जनित लावण्य है। प्रतिमा के शिरोभाग में तीर्थंकर की प्रतिमा अंकित है। लक्षणों के आधार पर प्रतीत होता है कि यह प्रतिमा 12वीं शताब्दी ई. की है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. सीताराम शर्मा, भोरमदेव क्षेत्र, पश्चिम-दक्षिण कोसल की कला, पृ. 163.
2. एलेक्जेंडर कनिंघम, आ.स.आ.इ.रि., भाग- 17, पृ. 44.
3. सीताराम शर्मा, भोरमदेव क्षेत्र, पश्चिम-दक्षिण कोसल की कला, पृ. 162.

जशपुर अंचल से जैन धर्म के पुरावशेष

डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र

छत्तीसगढ़ प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध भू-भाग रहा है। ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के साथ ही जैन-धर्म के इस क्षेत्र में प्रचलन की जानकारी मिलती है। छत्तीसगढ़ के अनेक स्थलों से जैन पुरावशेष बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। किन्तु राज्य के उत्तर-पूर्व में स्थित आदिवासी बहुल वनांचल से पहली बार जैन शिल्प की जैनकारी मिलती है। रायगढ़ जिले से विलग होकर नवगठित जशपुर जिले में प्रस्तुत लेखक (रमेन्द्रनाथ मिश्र) और संदीप कुमार शर्मा ने महाकोसल इतिहास परिषद् की ओर से सर्वेक्षण कर इस क्षेत्र में जैन प्रतिमाओं की खोज की है ।

इस सर्वेक्षण के दौरान जशपुर जिले के सीमांत ग्राम रेंड़े से जैन तीर्थंकरों की भग्न प्रतिमाएं मिली हैं। प्रथम प्रतिमा में तीर्थंकर की शीर्ष भाग भग्न है। अधिष्ठान भाग के मध्य में एक स्वास्तिक वृत्त के भीतर अंकित है। अधिष्ठान सहित सम्पूर्ण पाषाण खण्ड में पद्म दल का निरन्तर अंकन है। इस प्रकार पद्मदलों का चातुर्दिक अंकन से इसे विशिष्ट कलाकृति कहा जा सकता है। इस प्रतिमा की तिथि श्री गिरधारी लाल रायकवार, पुरातत्ववेत्ता, रायपुर के अनुसार 10-11वीं शताब्दी ई. की मानी जा सकती है।

जशपुर जिले के पहलगाँव विकास खण्ड में स्थित बागबहार ग्राम से स्थानक तीर्थंकर की प्रतिमा मिली है। प्रतिमा प्रभामण्डलयुक्त है। पाद-पीठ पर अस्पष्ट यक्ष-यक्षिणी और उपासक दृष्टव्य हैं।

बागबहार से प्राप्त दूसरी तीर्थंकर प्रतिमा स्तंभो के मध्य उत्कीर्णित है। इसका आकार लघु है। शैली के आधार पर इस प्रतिमा का काल 12-13वीं शताब्दी ई. निर्धारित किया जा सकता है। इस प्रतिमा में शिल्पांकन का स्तर अपेक्षाकृत न्यून है। बागबहार की दोनों प्रतिमाएं स्थानीय सरनास्वामी अथवा पूजा-स्थल में रखे होने के कारण अद्यतन सुरक्षित रह सकी हैं। ग्रामवासियों का कथन है कि भूत-बंधान की ओर होने के कारण लोग उस दिशा में जाने में डरते हैं। संभवत. अनिष्ट की आशंका से ही ये प्रतिमाएं सुरक्षित बच गईं।

इस प्रकार जशपुर जिले से जैन धर्म के संबंधित सामग्री की उपलब्धि से इस क्षेत्र में जैन धर्म के प्रचार की पुष्टि होती है। छत्तीसगढ़ के वनांचलों के सर्वेक्षण से अन्य पुरावशेषों की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अतः इतिहास में रुचि रखने वाले अध्येयताओं, संस्थाओं और शासन के अधिकारियों को इस दिशा में विशेष पहल करना चाहिए, जिससे भावी पीढ़ी के लिए ये धरोहर सुरक्षित रह सकें।

महेशपुर में जैन-धर्म के अवशेष

गिरधारीलाल रायकवार

छत्तीसगढ़ के उत्तर-पूर्व सीमान्त भू-भाग में स्थित, आदिवासी बाहुल्य सरगुजा जिले की रामगढ़ पहाड़ियों का ई.पू. द्वितीय-तृतीय शताब्दी के शैलोत्कीर्ण नाट्यशाला, भित्तिचित्र, नृत्यसंगीत एवं अभिनय के सूचक गुहालेख आदि के कारण भारतीय कला के इतिहास में विशिष्ट स्थान हैं। घने वन तथा दुर्गम शैलमालाओं की भौगोलिक संरचना के कारण यह क्षेत्र प्राचीन भारत के तत्कालीन विस्तारवादी राजसत्ता के प्रत्यक्ष नियंत्रण में नहीं था। धूमकेतु के सदृश्य उदित रामगढ़ की सांस्कृतिक प्रभामण्डल के तिरोहित होने का कोई ठोस साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो सका है, परन्तु इस भू-भाग के पूर्व मध्यकालीन तमसाच्छादित इतिहास की नवीन जानकारियों पर अवश्य प्रकाश पड़ सका है।

सरगुजा जिले के रामगढ़ पहाडी पर स्थित जोगीमारा गुफा के छत पर उपलब्ध भित्तिचित्र के दृश्य योजना में निश्चित रुप से जैन अथवा बौद्ध धर्म के प्रसंग के चित्र उपलब्ध हैं। दुर्भाग्यवश यहाँ के भित्तिचित्र अत्यधिक क्षतिग्रस्त अथवा धूमिल स्थिति में हैं, अतः इन चित्रों की विवेचना किया जाना संभव नहीं रह गया है। पूर्व के कला समीक्षकों ने इन चित्रों में से कुछ का विषय जैन धर्म बताया है।[1] इन भित्ति चित्रों में अश्व, गज, राजकीय समारोह-यात्रा, मानवाकृतियाँ, रथ, वृत्त, पद्म आदि आभासित हैं। इसी गुफा में ब्राह्मीलिपि में उत्कीर्ण लेख में सुतनुका नामक देवदासी का उल्लेख है। लिपि के आधार पर यह लेख ई.पू. 2-3री शताब्दी का माना जाता है। अत यहाँ के गुफा चित्रों को भी इसी काल का समीकृत किया जा सकता है। इस संबंध में विचारणीय तथ्य यह है कि समग्र दक्षिण कोसल में ई.पू. 2-3री शताब्दी के बौद्ध अथवा जैन धर्म से संबंधित पुरावशेष उपलब्ध नहीं हैं। रामगढ़ पहाड़ियों के सन्निकट एकमात्र स्थल महेशपुर में शैव एवं वैष्णव धर्म के साथ ही जैन धर्म के स्थापत्य अवशेष अद्यावधि विद्यमान है। यही सूत्र में जोगीमारा के भित्ति चित्रों के संबंध में अनुमान करने के लिए आधार प्रदान करता है कि यह स्थल जैन धर्म के गतिविधियों से अवश्य संबंधित रहा होगा।

महेशपुर, रामगढ़ की पहाड़ियों से लगभग 8 कि.मी. दूर रेंड नदी के तट पर स्थित है। यहाँ पर दक्षिण कोसल के सोमवंशीय शासकों (लगभग 7वीं शताब्दी ई.) के काल के स्थापत्य कला के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त त्रिपुरी के कलचुरियों के काल के शैव, वैष्णव एवं जैन मंदिरों के विपुल ध्वंसावशेष भी विद्यमान हैं। उदयपुर के एक स्थानीय शिक्षक श्री कमलाकान्त शुक्ला, जो पुरातत्वीय खोज के लिए समर्पित हैं, ने लगभग 10-12 वर्ष पूर्व महेशपुर से एक खण्डित अभिलेख ढूंढा था। यह अभिलेख वर्तमान में जिला पुरातत्व संघ-सरगुजा के संग्रह में रखा हुआ है। इस अभिलेख का प्रकाशन स्वर्गीय के.डी. बाजपेयी ने किया है।[2] इस अभिलेख में जिन-वन्दना है।

प्रथम पंक्ति - *अर्हनस्तु (अर्हन्तुम) लोकाम हितो हितकृत प्रजानाम धर्मरतो भगवतस्त्रि जगक्ष (श) रण्यःजनाम् च तस्त्र सचराचर (स्य) रत्नत्रयम् ।*

द्वितीय पंक्ति - *प्रतिमा ......दंड......वंश तिलकस्सकल द्युतिर्व्यक्ष घातक श्रीमान सम्यक पालित राज्यो राजा युवराज संजनो भूतास्यामात्माजो जगती -*

यह अभिलेख 9 पंक्तियों में है। इसक 7,8 एवं 9वीं पंक्तियाँ अत्यधिक क्षरित हैं। लेख की प्रथम पंक्ति का भावार्थ है कि सकल लोक के कल्याण तथा हित के उद्देश्य, प्रजा के धर्माचरण (के लिए) तीनों लोकों को शरण प्रदान करने (में समर्थ), मनुष्य तथा समस्त चराचर (में व्याप्त) त्रिरत्न (की प्रतिष्ठा के लिए) अर्हत (तीर्थंकर) की प्रतिमा को नमस्कार। अभिलेख से ज्ञात होता है कि त्रिपुरी के कलचुरि नरेश लक्ष्मणराज देव के राज्य काल (ई. 835-850) में भगवान आदिनाथ के जिनालय का निर्माण महेशपुर में कराया गया था।

उपरोक्त तथ्यों से हमें शैव, वैष्णव तथा जैन धर्म के सैद्धांतिक मत-विभिन्नता के बीच उदारता और धार्मिक सहिष्णुता की झलक दिखाई पड़ती है। तत्कालीन धर्माचार्यों की अंर्तदृष्टि के परिणामस्वरुप शैवों के साथ-साथ जैनियों ने भी महेशपुर में भगवान आदिनाथ के जिनालय का निर्माण कर शिव और आदिनाथ के विग्रह में एकत्व को उद्घोषित किया है। यह मूल रुप में शिव और आदिनाथ में अभेद ही प्रदर्शित होता है। **श्रीभक्तामर स्त्रोतम्** में भगवान आदिनाथ की महिमा का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में दृष्टव्य है -

नात्यभ्दुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥10॥

इस श्लोक का भावार्थ है - हे भुवन के भूषण ! हे भूतनाथ ! आप त्रिलोक के प्राणियों को जो अभिष्ट है क्या उसे प्रदान नहीं करते ? अथवा उसे अपने सदृश्य ही बना लेते हैं। यह कैसी अद्भुत लीला है ? आपमें ऐसी दयालुता क्यों है ?

एक अन्य श्लोक में भगवान आदिनाथ के आध्यात्मिक ज्योति का वर्णन करते हुए कहा गया है -

नित्योदयम दलित मोहमहान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प कान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ॥8॥

इस श्लोक का तात्पर्य है जगत् के अज्ञान और मोह के अन्धकार और न ही विषय विकार

रूपी राहु और न ही विपत्ति सदृश्य मेघ आपको प्रभावित करने में समर्थ हैं आपका मुख कमल निर्मल चन्द्रमा के सदृश्य ज्ञान, वैराग्य एवं योग के अपूर्व कांति से निरन्तर प्रकाशित है।

भारतीय शिल्प कला में तीर्थंकर विग्रहों में लावण्य, निर्विकार सौन्दर्य तथा आसीम ध्यान के भाव एक साथ रूपायित रहते हैं। समस्त प्रकार के दृश्य एवं अदृश्य शारीरिक चेष्टा स्थिर तथा चित्त संकल्प रहित रहते हैं। भगवान आदिनाथ की वंदना श्रीभक्तामर स्त्रोतम् के इस श्लोक में इसी भाव को प्रदर्शित करती है -

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता चलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥16॥

इस श्लोक में भाव है कि हे नाथ ! समस्त प्रकार की विभूतियों से सम्पन्न सर्वत्र, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होते हुए भी आप स्थिर दीपशिखा के सदृश्य निष्कम्प आभासित हैं। तथापि आप जगत् के प्रकाशक अपरदीप हैं। सर्वत्र गतिमान प्रबल मारुत भी आप को किंचित भी विचलित करनें असमर्थ है। आपसे ही यह सृष्टि प्रकाशित है।

महेशपुर के आदिनाथ की प्रतिमा शिल्प-शास्त्र के जिन प्रतिमा लक्षण एवं अन्य धार्मिक साहित्य में उल्लिखित पारम्परिक आध्यात्मिक भावों का उत्तम प्रादर्श है। यह प्रतिमा महेशपुर के मूल जिनालय के अवशिष्ट बेदिबन्ध में रखी हुई है। ध्वन्सावशेष का अवशिष्ट भाग संभवतः जिनालय का गर्भगृह है। अभिलेखीय प्रमाण के आधार पर इस प्रतिमा का निर्माण त्रिपुरी के कलचुरि राजा लक्ष्मणराज (9वीं शताब्दी ई.) के शासन काल में सुनिश्चित है। प्रतिमा का निर्माण स्थानीय भूरे-बलुए पत्थर से किया गया है तथा इसका आकार लगभग 4X2.6 फीट है। यह प्रायः परिपूर्ण स्थिति में है तथा प्राकृतिक प्रभाव से आंशिक रूप से क्षरित है। सरगुजा जिले में अद्यतन, यही एक स्थल जैन कलावशेष का है।

तीर्थंकर आदिनाथ की प्रायः आसनस्थ प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं तथापि यह प्रतिमा शास्त्रीय दृढ़ नियम में नहीं है। विवेच्य प्रतिमा गोलाकार शिलाखण्ड पर पद्मासन में ध्यानस्थ प्रदर्शित है। उनकी देह-भंगिमा अत्यंत संतुलित है तथा मुख पर ध्यान एवं तपःपूरित कल्याणमय ओज विस्तीर्ण है। इनका सम्पूर्ण शरीर महापुरुष के शारीरिक अवयवों से सदृश्य अभिप्रेरित है। इनके शिरोभाग पर उन्नत जटा-जूट की लटें मध्य से सामानान्तर विभाजित होकर दोनों स्कन्धों तक विस्तीर्ण है। शीर्ष के पृष्ठभाग में वृत्ताकार प्रभामण्डल है जिसपर पद्मदल आरेखित है। प्रभावली के ऊपर मध्य में त्रिशिखर छत्र है जिसके ऊपर दुंदुभिवादक तथा उभय पार्श्व में अभिषेकरत गज, आकाशचारी विद्याधर युगल माल्यार्पित करते दृष्टव्य हैं।

मध्य उभयपार्श्व में चंवरधारी इन्द्र द्विभंग में प्रदर्शित हैं। सिंहासन पीठ पर उत्कीर्ण पटल के मध्य में लघु आकार में लांछन वृषभ दृष्टव्य है एवं उसके नीचे अधिष्ठान से संयुक्त चतुर्भुजी

चक्रेश्वरी ललितासन में प्रदर्शित है। सिंहासन पर सम्मुख भाग में दोनों ओर बैठे सिंह आकृति तथा कोण भाग पर प्रतिष्ठापक आराधक द्रष्टव्य हैं।

भगवान आदिनाथ की यह प्रतिमा गर्भगृह में प्रतिष्ठित विग्रह रहा होगा। 9वीं शताब्दी ई. में निर्मित यह प्रतिमा स्थानीय निवासियों को, यहाँ कब से स्थित है, इसका ज्ञान नहीं है। उन्हें तो बस इतना ज्ञान है कि वे प्रारंभ से ही इसे देखते और पूजते चले आ रहे हैं। इनकी नजरों में यह बुद्धदेव हैं। यह उनकी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता का परिचायक है। इसी भावना का सुन्दर निरुपण **श्रीभक्तामर स्त्रोतम्** के निम्नलिखित महामंत्र में परिलक्षित है -

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चिति बुद्धिबोधात
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन ! पुरूषोत्तमोऽसि ॥25॥

इस श्लोक का तात्पर्य है हे देव आदिनाथ, तत्वज्ञानियों, ऋषि-महर्षियों के द्वारा अनुभूत परमसत्य एवं ज्ञान के तत्व को सहज बुद्धिगम्य आत्मसात करवानेवाले बुद्ध हैं। आप सम्पूर्ण त्रिभुवन के कल्याण की कामना के लिए उद्योगशील शंकर हैं। हे धीर ! आप मोक्ष मार्ग के लिए धर्माचार की संस्थापना के लिए विधाता हैं। आप स्वयं एकमात्र धर्म, ध्वज अवतरित परमपुरुष पुरुषोत्तम स्वरुप हैं।

इस प्रकार महेशपुर से प्राप्त आदिनाथ की यह प्रतिमा शास्त्र और शिल्प के समन्वय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1 वाचस्पति गैरोला, **भारतीय चित्रकला**, इलाहाबाद, 1963, पृ. 115
2. कृष्णदत्त बाजपेयी, *कान्ट्रीब्यूशन ऑफ दी चेदि कलचुरि डायनेस्टी टू इंडियन कल्चर*, **आर्ट ऑफ कलचुरि** (सम्पादक- के.के. चक्रवर्ती एवं आर. के .शर्मा) पृ. 37.

परिशिष्ट

छत्तीसगढ़ में जैन स्मारक एवं प्रतिमाओं की संदर्भ-सूची

डॉ. राजकुमार शर्मा

(डॉ. राजकुमार शर्मा द्वारा लिखित "मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ-ग्रंथ" मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1974 के पृ. 272-91 से साभार संकलित)

क्र. 1170 अड़भार (बिलासपुर)

(अ) तीर्थंकर प्रतिमा। बिलासपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (1910), पृ. 255.

(आ) खण्डित देवालय के निकट एक कोठरी में रखी पार्श्वनाथ की प्रतिमा जो लगभग 12वीं शताब्दी ईस्वी की है। ना. सू. (नामदेव सूची)

क्र. 1173 आरंग (रायपुर)

(अ) एक जैन मंदिर जो स्थानीय 'भाण्ड देवल' के नाम से प्रसिद्ध है। लगभग 11 वीं शताब्दी ई. के इस मंदिर को हैहय शासकों द्वारा बनाया गया था, ऐसी मान्यता है। क.आ.स.इ.रि. (कनिंघम: आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट), भाग - 7, पृ. 16 1-62, खण्डहरों का वैभव, पृ. 150, 162, क. लि. ए. रि. पृ. 48-49.

(आ) जैन प्रतिमाएँ। क.आ.स.इ.रि. भाग - 7, पृ. 164, क.आ.स.इ.रि. भाग - 17, पृ. 20-21.

क्र. 1188 कुर्रा (रायपुर)

प्राचीन जैन मंदिर के भग्नावशेष। रायपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (1909) पृ. 304.

क्र. 1221 डोंगरगढ़ (दुर्ग)

(अ) ऋषभदेव की प्रतिमा। खण्डहरों का वैभव, पृ. 142-44.

(आ) पार्श्वनाथ की प्रतिमा। खण्डहरों का वैभव, पृ. 145.

क्र. 1231 धनपुर (बिलासपुर)

(अ) लगभग 9वीं शताब्दी के चार जैन मंदिरों के समूह के अवशेष। क.आ.स.इ.रि., भाग - 7, पृ. 237, क.लि.ए.रि., पृ. 60, बिलासपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (1910), पृ. 265.

(आ) स्थानीय शोभनाथ तालाब के तट पर स्थित जैन प्रतिमाएं, उपरिवत्

(इ) तालाब के निकट एक वृक्ष के नीचे जैन प्रतमाओं के भग्नावशेष, जो लगभग 12वीं शताब्दी ईस्वी के हैं। नामदेव सूची

क्र. 1234 नगपुरा (दुर्ग)

कलचुरि कालीन जैन (? शिव मंदिर)। दुर्ग डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (1910), पृ. 182

क्र. 1249 पुजारीपाली (रायगढ़)

एक प्राचीन जैन मंदिर के भग्नावशेष। क.आ.स.इ.रि., भाग - 13, पृ. 144.

क्र. 1250 पेन्ड्रा (बिलासपुर)

राजमहल से प्राप्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा जो लगभग 12वीं शताब्दी ई. की है नामदेव सूची

क्र. 1269 बूढ़ीखार (बिलासपुर)

स्थानीय खण्डित देवालय में वृहदाकार तीर्थंकर प्रतिमा जो लगभग 12 वीं शताब्दी ई. की है। नामदेव सूची

क्र. 1274 बोरतालाब (दुर्ग)

मस्तक विहिन ऋषभदेव की प्रतिमा, जिसपर वि. सं. 1548 का लेख उत्कीर्ण है। ब. वै. पृ. 148.

क्र. 1281 मल्लार (बिलासपुर)

(अ) लगभग 8वीं शताब्दी ई. की महावीर प्रतिमा । इ.आ.रि. 1960-61, पृ. 59.

(आ) पातालेश्वर मंदिर के निकट एक घर में संग्रहित पार्श्वनाथ की प्रतिमा जो लगभग 12वीं शताब्दी ई. की है। नामदेव सूची

(इ) आधुनिक मंदिर में स्थित 24 तीर्थंकरों की समकालीन प्रतिमाएं। नामदेव सूची

(ई) मालगुजार के मकान की दीवार पर लगी तीर्थंकर प्रतिमाएँ। नामदेव सूची

(उ) पातालेश्वर मंदिर के निकट घर में संग्रहित आदिनाथ की प्रतिमा जो लगभग 12वीं शताब्दी ई. की है। नामदेव सूची

क्र. 1293 रतनपुर (बिलासपुर)
कंठीदेवल मंदिर में संग्रहित दो जैन तीर्थंकर प्रतिमाएं जो लगभग 12वीं शताब्दी ई. की हैं। नामदेव सूची

क्र. 1301 सक्ती (रायगढ़)
जंगल में एक विशालकाय जैन प्रतिमा। खण्डहरों का वैभव, पृ. 151.

क्र. 1302 सारंगपुर (रायगढ़)
जैन देवी तथा अन्य प्रतिमाएं जो लगभग 10-11वीं शताब्दी ई. की हैं। इ.आ.रि. (सा.रि.) 1964-65, पृ. 43.

क्र. 1307 सिरपुर (रायगढ़)
(अ) गधेश्वर मंदिर के निकट एक प्राचीन जैन मंदिर के भग्नावशेष। क.आ.स.इ.रि. भाग - 7, पृ. 170.
(आ) आदिनाथ की कांस्य प्रतिमा जो लगभग 9 वीं शताब्दी ई. की है। खण्डहरों का वैभव, पृ. 153-54 .

आरंग से प्राप्त तीन जैन स्फटिक मूर्तियाँ

चित्र क्र 1- पार्श्वनाथ

चित्र क्र 2 - शीतलनाथ

चित्र क्र 3 - शीतलनाथ

रायपुर संग्रहालय की जैन प्रतिमाएँ

चित्र क्र 4- पार्श्वनाथ सिरपुर

चित्र क्र 5 - ऋषभनाथ रतनपुर

चित्र क्र 6 - चन्द्रप्रभ रतनपुर
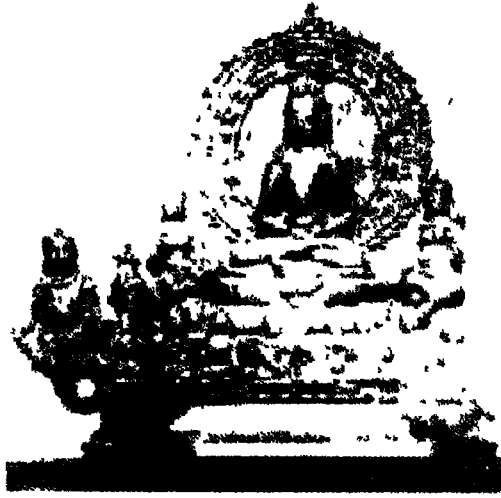
चित्र क्र 7 - आदिनाथ, सिरपुर (मुनि कान्तिसागर के संग्रह में)
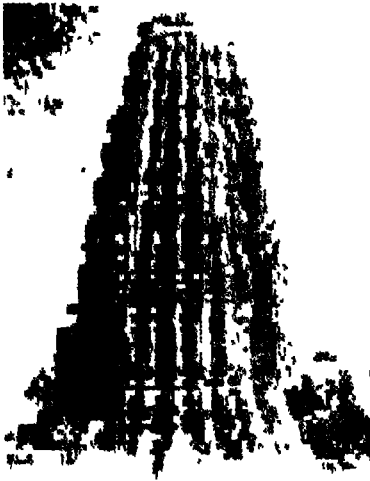
चित्र क्र 8 - भाण्डदेवल मंदिर, आरंग

चित्र क्र 9 - तीर्थंकर प्रतिमाएँ

बिलासपुर संग्रहालय की जैन शिल्प-सम्पदा

चित्र क्र 11 -आदिनाथ, रतनपुर

चित्र क्र 10 -तीर्थंकर, रतनपुर

चित्र क्र 12 -आदिनाथ, रतनपुर

बिलासपुर संग्रहालय की जैन शिल्प-सम्पदा

चित्र क्र 13 - मल्लिनाथ, रतनपुर

चित्र क्र 14 - तीर्थंकर, रतनपुर

चित्र क्र 15 - गोमेद-अंबिका, रतनपुर
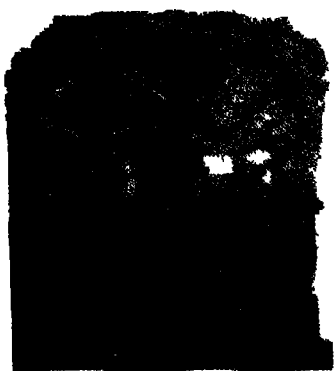
चित्र क्र 16 -बाहुबली, रतनपुर

बस्तर की जैन प्रतिमाएँ

चित्र क्र 1" -आदिनाथ कुन्मपाल (चित्र- ग्म पी तिवारी क माजन्य म)

चित्र क्र 18 -पार्श्वनाथ गढबोदरा (चित्र क के झा के साजन्य मे)

राजनांदगॉव जिले की जैन प्रतिमाएँ

विश्वविद्यालय सग्रहालय खैरागढ

चित्र क्र 19 -धर्मनाथ कवर्धा

चित्र क्र 20 -धर्मनाथ क्रीतवाम्य (गण्डई)

चित्र क्र 21 -पार्श्वनाथ, डोंगरगढ
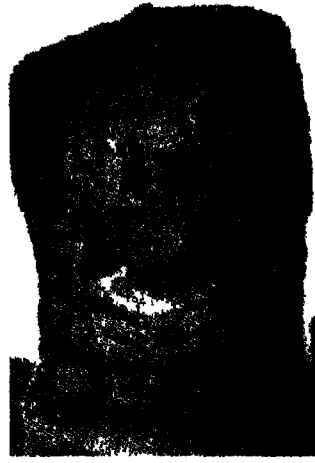
चित्र क्र 22 - जैन तीर्थंकर, डोंगरगढ

चित्र क्र 23 - आदिनाथ [illegible] (रूगजा)